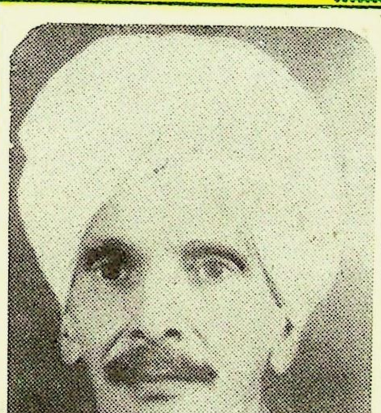
लाला ईश्वरदास मींगी



प्रो॰ रामनाथ शास्त्री

ॐ श्री वेद मन्दिर
पुस्तकालय
के लिए
सप्रेम भेंट

ओमप्रकाश
शास्त्री
21.5.77

लाला ईश्वरदास मींगी

एक समर्पित शिक्षा-शास्त्री तथा समाज-सेवक की
संक्षिप्त जीवन-गाथा

लेखक :

प्रो. रामनाथ शास्त्री

प्रकाशक तथा प्राप्ति-स्थान

डॉ. ओम प्रकाश मींगी (दन्त विशेषज्ञ)

94 मस्तगढ़, जम्मू (तवी)

(180001)

Lala Ishwardas Meengi

A Monograph

By

Prof . R. N. Shastri

प्रकाशन - वर्ष .... जनवरी 1999 ई॰

मूल्य .... पचास रुपए

प्रकाशक .... डॉ॰ ओम प्रकाश मींगी

मुद्रक:-

क्लासिक प्रिंट्ज़, नेशनल हाई वे, बाड़ी ब्राह्मणां,
जम्मू । फोन : (01923) -20243

आशीर्वाद

साधना केन्द्र आश्रम, गांव-डुमेट,
पो.ओ.-अशोक आश्रम,
जिला-देहरादून, 248125

प्रिय आत्मा डॉ.ओ.पी. मैंगी,

सप्रेम हरि ॐ

आप द्वारा भिजवाई अपने पिताजी, लाला ईश्वरदास मैंगी जी की जीवनी पढ़ने को मिली। प्रो० रामनाथ शास्त्री जी द्वारा लिखित इस पुस्तक से उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के दिग्दर्शन होते हैं। अपने जीवन के आरम्भ काल में वे जुझारू, सत्यशील, संयमी, मितव्ययी, सच्चे विद्यार्थी थे। उसके उपरान्त उन्होंने एक सफल एवं आदर्श अध्यापक के रूप में विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में सेवारत रह कर दीर्घकाल तक जम्मू निवासियों की सेवा की। शिक्षा विभाग से सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम की भावना के अनुकूल, सुदीर्घ २९ वर्ष तक, वेद-मन्दिर के मन्त्री पद पर रह कर अनेक प्रकार से सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में सेवा की।

मेरे जम्मू में साधना काल की अवधि में मेरा भी उनसे संक्षिप्त परिचय रहा तथा मैंने उन्हें सदैव एक सौम्य, सेवाभावी तथा सच्चे जिज्ञासु व्यक्ति के रूप में पाया। उनके अनेक सद्गुणों एवं परोपकारी वृत्ति के कारण जम्मू के लोगों ने भी उन्हें बहुत आदर तथा प्रेम दिया।

आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ कर अन्य लोग भी उनके अनुकरणीय जीवन से प्रेरणा ले सकेंगें।

शुभकामनाओं सहित,
चन्द्रस्वामी

दिनांक: 22-05-98

विषय-सूची

लाला जी के चित्र

(जो उनकी इस जीवनी में दिये गए हैं)

लाला ईश्वरदास मींगी

(नवम्बर 1886 ई. सितम्बर 1975 ई.)

-उनकी जीवन-यात्रा से जुड़ी कुछ तिथियां-

1.	28 नवम्बर 1886 ई.	जन्म (रावलपिंडी में)
2.	सन् 1907 ई.	बी. ए. परीक्षा पास की (अमृतसर से)
3.	सन् 1908 ई.	(जम्मू प्रान्त में) मीरपुर नाम के कस्बे में स्कूल-मास्टर नियुक्त हुए।
4.	सन् 1909 ई.	S.A.V. ट्रेनिंग की (लाहौर में)
5.	सन् 1910 ई.	B.T. पास की (लाहौर से)
6.	सन् 1905 ई.	विवाह (दूसरा)
7.	सन् 1908 से सन् 1941 ई. तक (30 वर्ष)	रियासत के शिक्षा-विभाग में 33 वर्ष तक बतौर अध्यापक,हैडमास्टर, इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्ज़ और (B.T.) क्लास के इन्चार्ज प्रोफेसर के रूप में क ाम करके नवम्बर 1941 ई. में रिटायर हुए।
8.	सन् 1942 ई.	रिटायर होकर मॉडल अकैडमी नाम के एक प्राइवेट स्कूल में हैडमास्टर बने।
9.	सन् 1943 ई. (सन् 1972 ई. तक)	जम्मू के वेद मन्दिर में समाज-सेवा शुरू की। मन्दिर की प्रबन्धक-कमेटी के मंत्री-पद का भार 29 वर्ष तक सम्भाला।
10.	सन् 1975 ई.	89 वर्ष की आयु भोग कर पंचतत्त्व में विलीन हुए।

विषय - प्रवेश

अध्याय-(एक)

स्व. श्री ईश्वरदास मींगी जी की यह संक्षिप्त जीवनी

लिखने का आयोजन और उपलब्ध साधन

जून 1997 अब समाप्त होने वाला है। आज से लगभग 7-8 महीने पहले एक दिन श्री ईश्वरदास मींगी जी के सुपुत्र श्री ओम प्रकाश मींगी से शहर में मुलाकात हुई तो मैंने उनसे कहा कि स्व. श्री ईश्वर दास जी मींगी जम्मू की एक विभूति थे। वे एक अत्यन्त सौम्य, विनीत तथा लग्न वाले कर्मयोगी थे। वे शिक्षा के क्षेत्र में एक सफल *हैडमास्टर*, एक अच्छे इंस्पेक्टर (ऑफ स्कूल्ज), एक सम्मानित प्रोफेसर और एक समर्पित भाव से तन-मन लगाकर काम करने वाले समाजसेवी थे। आप शिक्षित भी हैं तथा समाज-सेवा के लिए आपके मन में ललक भी है। आप अपने पिता-श्री की इन उपलब्धियों के बारे में एक 'मोनोग्राफ' (Monograph) क्यों नहीं लिखते ? यह रचना आपके अपने परिवार के लिए, तथा अपने समाज के लिए, एक उपयोगी तथा स्थायी उपहार होगा, और यह श्री ईश्वरदास जी को, आपकी ओर से, एक सदाबहार श्रद्धांजलि होगी।

लेकिन सन् 1997 के शुरू में ही श्री ओम प्रकाश मींगी अपने पड़ोसी श्री ब्रह्मस्वरूप सच्चर के साथ मेरे निवास-स्थान, कर्ण नगर (जम्मू) में आए। बोले, लाला ईश्वरदास मींगी जी के जीनव के बारे में, 'मोनोग्राफ' या जीवनी, जो कुछ भी लिखना है, वह आपने ही लिखना है। इस प्लास्टिक के थैले में लाला जी के कुछ फोटो-चित्र हैं, हमारे परिवार का, फारसी लिपि में, हाथ से लिखा, एक वंश-वृक्ष (Family Tree) भी है, लाला जी का एकाध सर्टिफिकेट है, तथा उनके अपने हाथ के लिखे कुछ और कागज़ भी हैं।

मैं उस समय यह जिम्मेवारी अपने ऊपर लेने की मानसिक स्थिति में

नहीं था, लेकिन स्थिति ऐसी बन गई थी कि मैं तत्काल इन्कार भी नहीं कर सकता था। ओम प्रकाश जी ने कहा कि इस शहर में ऐसे अनेक लोग हैं जो लाला ईश्वरदास मींगी जी को जानते हैं, मैं उनसे भी लाला जी के विषय में उनकी प्रतिक्रियाएं लिखवा कर आप को दूंगा। मैंने स्वयं भी कुछ लोगों से, लाला जी के विषय में कुछ संस्मरण लिखने के लिए निवेदन किया। लेकिन कुछ उत्साहजनक परिणाम नहीं निकला। ओम प्रकाश जी के इस दिशा में किए गए उद्यम के फल स्वरूप तीन-चार आदमियों ने अपनी संक्षिप्त सी प्रतिक्रियाएं लिखकर भेजीं। केवल श्री कैलाश नाथ "मैकश" काश्मीरी ने कुछ विस्तार से लिखे अपने संस्मरण भेजे।

मैंने श्री वेद मन्दिर में पिछले 50-55 वर्ष से, मन्दिर के प्रबन्धक के रूप में काम करने वाले पंडित ठाकुरदास जी से निवेदन किया कि वे वेद मन्दिर के विषय में, तथा ख़ास तौर पर वेद मन्दिर की प्रबन्धक कमेटी के मंत्री के रूप में काम करने वाले लाला ईश्वरदास मींगी के विषय में जो जानकारी उनको मालूम है, वह लिख कर मुझे दें। श्री ठाकुर दास जी ने इस सम्बन्ध में चार पांच सफे लिख कर मुझे दिए। मैं इस सामग्री का यथास्थान उपयोग करूंगा। इन सभी महानुभावों के प्रति, इस समय मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

इसके बाद मैंने उन कागज़ों को पढ़ना शुरू किया, जो कागज़ श्री ओम प्रकाश मींगी एक प्लास्टिक के बैग में रख कर मुझे दे गए थे।

इन कागजों में उनके एक-दो फोटो-चित्र, उनका (B.T.) परीक्षा पास करने का एक सर्टिफिकेट, उनके परिवार की वंशावली, आदि, मेरे लिए अधिक उपयोग के स्रोत नहीं थे। हाँ, इन कागजों में, उनके हाथ की लिखी हुई एक कापी के 40-50 सफे पढ़ कर मुझे प्रसन्नता हुई। इस कापी में उन्होंने सरल हिन्दोस्तानी (हिन्दी) भाषा में अपने जीवन के कुछ संस्मरण लिखे हैं। ये संक्षिप्त संस्मरण श्री ईश्वरदास मींगी जी ने 20.9.1959 ई. से लिखने शुरू किये थे। उस समय श्री ईश्वरदास मींगी 72 वर्ष की आयु भोग चुके थे और

श्री वेदमन्दिर जम्मू की प्रबन्धक-कमेटी के मंत्री के रूप में काम करते हुए भी उन्हें 15 वर्ष हो चुके थे।

श्री ईश्वरदास मींगी ने ये संस्मरण लिखने का काम 20. 9. 59. को शुरू किया था। उनके आखिरी संस्मरण के साथ 16. 4. 69 की तारीख लिखी हुई है। अर्थात् लाला जी लगभग 9 वर्ष और 5 महीने तक इस एक कापी पर कभी-कभी कुछ लिखते रहे थे। लेकिन कापी के इन 80 सफों में उनके अपने परिवार-सम्बन्धी संस्मरण कुल 50-55 सफों तक ही सीमित हैं। अर्थात् आखिरी संस्मरण 12. 9. 1963 ई. को लिखा गया है। इस के आगे के संस्मरणों का प्रमुख विषय, विविध स्रोतों से प्राप्त धार्मिक प्रेरणाएं और प्रेरक उपदेशांश हैं और ये सब बातें उन्होंने अंग्रेजी भाषा में लिखी हैं।

लाला जी के संस्मरणों की इस कापी के, इन पहले 50-55 सफों में उनके परिवार के विषय में, तथा उनके बचपन तथा लड़कपन और उनकी शुरू की पढ़ाई-लिखाई के बारे में कुछ रोचक तथ्यों की जानकारी मिलती है। उनके इन संस्मरणों से मुझे उनके जीवन की रूप-रेखा को कलमबन्द करने में काफी मदद मिली है। हाँ, मुझे यह भी आभास हुआ कि श्री मींगी जी ने अपने परिवार-जनों तथा दूसरे सम्बन्धियों के विषय में बहुत सी बातों को प्रकाश में लाना मुनासिब नहीं समझा। उन्होंने अपने इन संस्मरणों का घेरा अपने ही परिवार-जनों तक सीमित रखा है। इस घेरे से बाहिर निकल कर, अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा राजनीतिक हालात पर उन्होंने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। जिन स्कूलों, विद्यालयों, महाविद्यालयों में उन्होंने स्वयं शिक्षा ग्रहण की, और बाद में जहाँ-जहाँ उन्होंने अध्यापक या मुख्य अध्यापक के रूप में काम किया उन संस्थाओं के बारे में भी श्री ईश्वरदास मींगी ने कुछ लिखना मुनासिब नहीं समझा। लेकिन क्यों ?

शायद, यह उनके स्वभाव की मजबूरी रही होगी। पाठक भी इन सभी तरह की सीमाओं को अपने सामने रखकर ही इस आलेख (मोनोग्रॉफ़) को पढ़ें, यही हमारा अनुरोध है।

अध्याय-(दो)

लाला ईश्वरदास मींगी से मेरी पहली मुलाकात

लाला ईश्वरदास मींगी उस समय श्री रणबीर हाईस्कूल में हैडमास्टर के रूप में काम कर रहे थे। यह सन् 1936 ई. की बात है। मैंने इसी स्कूल से सन् 1931 ई. में दसवीं जमात का इम्तेहान पास किया था। मेरे पिता, श्री गौरी शंकर आयुर्वेदिक वैद्य थे। वे चाहते थे कि मैं भी अपने घर का यही परम्परागत पेशा अख्त्यार करूँ। इसके लिए ज़रूरी था कि मैं पहले किसी अच्छी संस्कृत पाठशाला में संस्कृत पढ़कर, संस्कृत की एक दो यूनीवरसिटी-परीक्षाएं पास करके फिर लाहौर में चला जाऊं और वहां आयुर्वेद की तालीम लूँ। पिता-श्री की इच्छा का आदर करते हुए मैंने सन् 1931 ई. में दसवीं पास करके, श्री रणबीर हाईस्कूल में ही काम करने वाली श्री रणबीर संस्कृत पाठशाला में दाखिला ले लिया। वहां से मैंने संस्कृत की 'प्राज्ञ' और 'विशारद' नाम की दो यूनिवरसिटी परीक्षाएं पास कीं और संस्कृत की पढ़ाई में दिलचस्पी की वजह से उसी पठाशाला में 'शास्त्री' (Honours in Sanskrit) की परीक्षा के लिए पढ़ाई शुरू कर दी। इस पाठशाला में शास्त्री क्लास के छः पर्चों को पढ़ाने वाले सिर्फ एक ही पंडित जी थे। इस लिए यह संभव नहीं था कि वे सभी पर्चों के पाठ्य-क्रम (Courses) को सन्तोषजनक ढंग से हमें पढ़ा सकते। हमारे मन में डर पैदा होने लगा की इन हालात में हम 'शास्त्री' की यूनीवरसिटी-परीक्षा, पहली परीक्षाओं की तरह, पास नहीं कर सकेंगे। हम दो साथी थे। मेरे सहपाठी मेरी तरफ देखते थे कि अब क्या किया जाए ? मैंने कहा, इस स्थिति से निकलने का सिर्फ एक ही रास्ता है कि हम श्री रघुनाथ मन्दिर जम्मू में काम करने वाली श्री रघुनाथ संस्कृत पाठशाला में दाखिल होकर अपनी पढ़ाई पूरी

करें। वहाँ, 'शास्त्री' परीक्षा के सभी पर्चों के पाठ्यक्रम (Courses) की पढ़ाई करवाने वाले अलग-अलग अध्यापक थे। लेकिन हमें भय था कि स्कूल की पाठशाला के हमारे गुरु, पंडित जी हमें 'डिस्चार्ज सर्टिफिकेट' नहीं देंगे। हमने उनसे यह निवेदन किया तो वे हमसे एकदम नाराज़ हो गए। उनका नाराज़ होना स्वाभाविक था। उनके सम्मान को इस बात से ठेस लगी थी। लेकिन हमारी परेशानी भी सही थी। मैंने अपने सहपाठी से कहा कि मैंने फैसला किया है कि मैं इस सिलसिले में स्कूल के हैडमास्टर साहब से मिलूँ। हाईस्कूल के साथ-साथ पाठशाला की व्यवस्था भी वे ही देखते थे। यह बात सही है कि सीधे हैडमास्टर साहब से मिलकर अपनी बात सुनाने में संकोच तो था ही, एक भय भी था। संकोच इस कारण था कि पाठशाला में पढ़ते हुए, उस छोटे से घेरे से बाहिर, किसी शिक्षा-अधिकारी से हम लोग कभी मिले नहीं थे। उनसे कभी बात करने का काई अवसर हमें मिला ही नहीं था। और भय इस लिए था कि यदि उन्होंने भी हमारी प्रार्थना पर ध्यान हीं दिया और डांट दिया तो फिर हमारी क्या स्थिति होगी? लेकिन मैंने मन में साहस जुटाया और एक दिन उनके दफ्तर के दरवाज़े पर जा पहुंचा। वहां बैठे चपरासी से कहा, "मैं हैडमास्टर साहब से मिलना चाहता हूँ।" उसने हाथ के इशारे से संकेत किया "चले जाओ।" मैं अन्दर जाकर उनकी मेज़ के पास खड़ा हो गया। वे शायद कुछ लिख रहे थे। लिखना रोक कर उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैंने दोनों हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, "कहो क्या बात है"?

"इक प्रार्थना करनी ऐ श्रीमान जी"। मैने अपनी मातृभाषा डोगरी में कहा। उन्होंने मुझे घूर कर देखा और डोगरी भाषा में पूछा - "केह् प्रार्थना करनी ऐ"?

मैंने कहा, श्रीमान जी, में इस्सै स्कूला दी पाठशाला दा विद्यार्थी आं। में

सन् 1931 ई. च ''मैट्रिकुलेशन'' दा इम्तिहान पास करियै अग्गे कालेज च पढ़ाई करने दी बजाए संस्कृत पढ़ने आस्तै इस्सै पाठशाला च दाखल होआ हा।......................

वे बड़ी दिलचस्पी से मेरी बात सुन रहे थे। मैंने उन्हें शास्त्री श्रेणी की परीक्षा की तैयारी में आने वाली दिक्कत की बात सुनाई और कहा कि हमारी पढ़ाई की यह कमी, इस पाठशाला में रहकर दूर नहीं हो सकती। इसके लिए हमारा श्री रघुनाथ संस्कृत पाठशाला में दाखिल होना ज़रूरी है।

श्री मींगी मेरी बात सुनकर कुछ देर चुप रहे और फिर बोले, ''गल्ल ते तेरी मुनासब ए बेटे, तुन्दे कैरियर (Career) दा सवाल ऐ। पंडित जी दी भावना गी बी में समझनां। तुसें इस्सै पाठशाला च, उन्दे कोला पढ़ियै पहले दो इम्तिहान पास कीते न। हुन इस आखरी परीक्षा दे आखरी बरे च तुस लोक इस पाठशाला गी छोड़ियै दूई पाठशाला च चली जाओ, एह गल्ल इक अच्छे अध्यापक दे मनै गी दुःखी ते करदी ऐ। पर में पंडित जी गी आपूं समझांग। पंडित जी दा दुःखी होना बी मनासब ऐ, पर तुन्दी पढ़ाई दा सवाल ज्यादा ज़रूरी ऐ। तुस लोक अपनी बक्खरी-बक्खरी दरखास्त कल्ल सवेरे मिगी देई जाएओ, तुसेंगी 'सर्टिफिकेट' मिली जाग।''

मैं उनको नमस्कार करके, उनके दफ्तर से बाहिर निकला तो मेरा मन हैडमास्टर साहब के इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से गद्गद् हो रहा था। मैंने 1930-1931 ई. में दसवीं जमात मे पढ़ते हुए लाला दासराम मलिक जैसे हैडमास्टर को देखा हुआ था। वे हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे, लेकिन लड़कों से बड़ी सख़्ती से पेश आते थे। लड़ाई, झगड़ा और कोई शरारत क़रने पर जब वे स्कूल के हाल कमरे के प्लेटफार्म पर खड़े होकर दूसरे लड़कों के सामने, उन कसूरवार लड़कों को बैंत लगाने की सज़ा देते थे तो लड़कों के मन दहशत से

कांप जाते थे। श्री दामराम मलिक मूलत: पश्चिमी पंजाब के डेरा इस्माइल खां जैसे किसी दूर-दराज़ इलाके के रहने वाले थे। शरीर के भारी थे। सिर पर कुल्ले वाली लुंगी बाँधते थे। उनसे पहले, श्री भंडारी साहब इस स्कूल के हैडमास्टर रहे थे। तीन 'पीस' का नीला सूट पहनते थे। बास्कट की दोनों ऊपरी जेबों में उनकी घड़ी के साथ बंधी सोने की जंजीरें चमकती थीं। स्कूल के लड़के उनसे बात करते हुए भी झिझकते थे। ये दोनों हैडमास्टर रियासत के बाहिर के लोग थे। वे पंजाबी में बात करते थे या हिन्दुस्तानी में यह बात मुझे अब याद नहीं है।

मैं समझता हूं कि लाला ईश्वरदास मींगी, जम्मू प्रान्त की इस अग्रणी (Premier) शिक्षण-संस्था के पहले हैडमास्टर थे, जो जन्म और परवरिश से डोगरा थे और जो अपने व्यवहार में भी डोगरा थे। इसीलिए वे मेरे जैसे एक साधारण डोगरा छात्र (Student) के साथ, इतनी आत्मीयता से पेश आए। मेरी बात उन्होंने इतने धैर्य से सुनी। मुझे अपनी मातृभाषा में बात करने को उत्साहित किया और स्वयं भी मेरे साथ डोगरी भाषा में ही बात करते रहे। उनकी यह तस्वीर मेरे मन में अंकित हो गई। ऐसी आत्मीयता को कोई भुला भी कैसे सकता है ?

हमें श्री रणबीर हाईस्कूल की पाठशाला से सर्टिफिकेट मिल गए, जिनकी मदद से हम दोनों सहपाठी, श्री रघुनाथ संस्कृत पाठशाला में प्रवेश पा सके। वहां हम दोनों ने, पंजाब यूनिवरसिटी की शास्त्री की परीक्षा अच्छे नम्बर लेकर पास की। मेरे विद्यार्थी-जीवन के सफर में इस परीक्षा में मिलने वाली यह सफलता एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना थी। इस सफलता का बहुत बड़ा श्रेय श्री रघुनाथ संस्कृत पाठशाला के अनुकूल वातावरण को जाता है। और श्री रघुनाथ मन्दिर की इस पाठशाला में हम इस लिए प्रवेश पा सके क्योंकि स्कूल

की पाठशाला से हमें उस स्कूल के हैडमास्टर, श्री ईश्वरदास मींगी जी ने डिस्चार्ज सर्टिफिकेट दिलवाये थे। आज 1997 ई. के मध्य में इकसठ साल बीत जाने पर भी, मैं लाला ईश्वरदास मींगी जी के साथ अपनी उस मुलाकात को भूला नहीं हूँ।

लेकिन जीवन के इस सफर में, लाला ईश्वरदास जी से मेरी एक और मुलाकात हुई थी। जब श्री मींगी, वेद मन्दिर जम्मू की प्रबन्धक कमेटी के मन्त्री-पद का दायित्व निभा रहे थे। मैं वेदमन्दिर के पास ही, उस समय के मुहल्ला **हवेली बेगम** में रहता था। साठ के दशक में इस मुहल्ले का नाम बदल कर 'कर्णनगर' कर दिया गया था। इस मुहल्ले में रहने वाले हम गरीब लोगों से, किसी ने परामर्श करके इसका नाम नहीं बदला था। मुहल्ला हवेली बेगम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नाम था। उस नाम को बदलने का मतलब था, जम्मू के गौरवपूर्ण इतिहास का एक सुनहरी पन्ना फाड़कर फैंक देना। मुझे इस बात की बड़ी वेदना है कि हम लोग व्यक्तिगत स्वार्थ-लाभ के कारण सामूहिक हित के सूचक निशानों को भी बे-दरंग पोंछ कर मिटा देने में भी संकोच नहीं करते। ख़ैर, जो घटनाएं घट जाती हैं, वे अपने पीछे जो कड़बी या मीठी यादें छोड़ जाती हैं, वे भी हमारे जीवन के साथ-साथ सफर करती रहती हैं।

श्री वेद मन्दिर भी श्री रणबीर हाई स्कूल की तरह, जम्मू शहर के सांस्कृतिक जीवन में बड़े ऐतिहासिक महत्व का स्थान रखता है। सन् 1935 ई. के लगभग जब श्री ईश्वरदास मींगी जी श्री रणबीर हाई स्कूल, जम्मू के हैडमास्टर बन कर वहां आये थे तो वह स्कूल हमारी रियासत में पढ़ाई तथा अनुशासन, दोनों पहलुओं से एक आदर्श संस्था के रूप में प्रसिद्धि की चरम सीमा पर था। और सन् 1941 में सरकारी नौकरी से सेवा-निवृत्त होने के दो

साल बाद जब श्री मींगी 1943 ई॰ में समाज-सेवा के लिए समर्पित होकर जम्मू की श्री वेदमन्दिर जैसी अनन्य संस्था की प्रबन्धक-समिति के अवैतनिक मंत्री बने, तब तक श्री वेद मन्दिर भी, जम्मू शहर की एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था।

महाराजा प्रताप सिंह जी ने, 20 दिसम्बर 1916 ई. के दिन, चौरासी कनाल का यह भू-भाग, स्वामी चम्पा नाथ नाम के एक योगी को 'वेदमन्दिर' की स्थापना के लिए दिया था। स्वामी चम्पा नाथ, कुल दस वर्ष तक इस वेदमन्दिर में टिक रहने के बाद सन् 1926 ई. में जब यहां से पुरमंडल जाने लगे तो उन्होंने इस स्थान की देखभाल करने के लिए एक कमेटी बनाई थी। उस समय इस कमेटी के पहले प्रधान थे पं. ठाकुरदास (जम्मू के सैशन जज, रिटायर्ड) और पहले मंत्री बने थे डुग्गर के महान समाजसेवी, लाला हंसराज। मेरा सौभाग्य है कि लाला हंसराज जी से मेरी मुलाकात यहीं वेदमन्दिर में हुई थी। बड़े असाधारण व्यक्तित्व के मालिक थे लाला हंसराज। लाला हंसराज लगभग 15-16 वर्ष तक वेद-मन्दिर में, इस अवैतनिक पद का सेवा-भार निभाते रहे। **डोगरा सदर सभा** जैसी जम्मू की प्रथम प्रतिनिधि लोक संस्था के भी वे ही संस्थापक थे। वेद-मन्दिर की गौरवपूर्ण परम्पराओं को लाला जी ने सुरक्षित रखा। वे प्रतिदिन नियमित रूप से वेद मन्दिर में आते थे और इस संस्था के योग-क्षेम के लिए पूर्ण रूप से समर्पित होकर कार्य करते थे।

लाला हंसराज जी के बाद सन् 1943 ई. में सेवा का यह कठिन भार वहन करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था लाला ईश्वरदास मींगी जी को। उस समय श्री मींगी जी की आयु 57 वर्ष की थी। श्री मींगी जी ने सन् 1972 ई॰ तक अर्थात 28-29 वर्ष तक इस दुष्कर उत्तरदायित्व को निभाया। इस बात की चर्चा हम आगे चल कर करेंगे।

अध्याय-तीन

शिक्षा प्राप्त करने के लिए ऊबड़-खाबड़ सफर

जिस व्यक्ति के चारित्रिक तथा सामाजिक गुणों के कारण हम उसके बारे में कोई कुछ लिखना चाहें तो प्राय: ऐसा होता है कि हमें, उसके परिवार, उसके अभिभावक (Guardian), उसकी शिक्षा तथा उसके जीवन के अंकुरित तथा विकसित होने के लिए उपलब्ध होने वाले वातावरण आदि के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन हमें सन्तोष है कि आज (सन् 1997 ई. में) 110 वर्ष पहले हमारी इस रियासत में जन्म लेने वाले जिस विनम्र कर्मयोगी के बारे में हम कुछ लिखना चाह रहे हैं, उसके बारे में कुछ प्रामाणिक जानकारी हमें, उसके अपने हाथ से लिखे, उसके संक्षिप्त संस्मरणों से प्राप्त हुई है। उन्होंने अपने ये संक्षिप्त संस्मरण उस समय लिखने शुरू किए थे जब वे 73 वर्ष के हो चुके थे। इसलिए स्वाभाविक था कि उनके इन संस्मरणों में उन्हें जो-जो बीती हुई बात और घटना याद आती गई, उसे उन्होंने इन संस्मरणों में इसी क्रम से लिख डाला। वे जब कोई संस्मरण लिखने लगते तो कापी के बाएं हाशिये पर, उस दिन की तिथि-तारीख, विक्रमी और ईसवी दोनों कैलंडरों के मुताबिक दर्ज कर लेते थे। उन्हें ये संस्मरण लिखने की प्रेरणा कैसे हुई, इस बात की चर्चा करते हुए श्री मींगी लिखते हैं:

"कुछ समय हुआ कि मेरे स्पुत्र (सुपुत्र) ओम प्रकाश ने मुझे कहा कि मैं अपनी जिन्दगी के कुछ हालात लिख डालूं। जवाब में मैंने द्रबी जुवान से 'हाँ' तो कर दी लेकिन ऐसा करने का साहस न हुआ। क्योंकि मैं अपने में कोई ऐसी वशेश (विशेषता) नहीं पाता था जो लिख डालूं। अलबत्ता जीवनभर मैं यह सहस (साहस, यत्न) ज़रूर करता रहा हूं कि मैं प्रतिदिन उन्नति करूँ। इस खिआल मे कि यह प्रयतन (प्रयत्न)

करने की आदत इस कहानी के पढ़ने वालों के लिए 'नमूना' साबित हो, (इसलिए) अपनी ज़िन्दगी के हालात लिखने का बीड़ा उठाया है।"

लाला जी की लिखाई का यह नमूना आपने देखा। 'ब्रैकटों' में कुछ शब्दों के सही हिज्जे मैंने लिखे हैं। हिन्दी-उर्दू के इस मिले-जुले भाषायी रूप को **सरल हिन्दी** कहने की बजाए महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित **हिन्दोस्तानी** का नमूना कहना अधिक मुनासिब होगा।

लाला जी के इन संस्मरणों को पढ़कर मुझे लगा कि लाला जी **महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू,** तथा **लाजपतराय** आदि भारत के राष्ट्रीय नेताओं के विचारों से बहुत प्रभावित थे, और उनका बड़ा मान करते थे। उनके इस प्रारम्भिक संस्मरण में एक-दो बातें बड़ी अर्थ-पूर्ण हैं। अपने पुत्र के कहने पर श्री मींगी जी ने अपने जीवन के कुछ हालात लिखने की हाँ कर दी, तब भी शुरू में ऐसा करने का उन्हें साहस नहीं था। क्योंकि-**"मैं अपने में कोई ऐसी विशेषता नहीं पाता था जो लिख डालूँ।"**

यह स्व. मींगी जी के स्वभाव की विनम्रता को दर्शाने वाली बात है। यही विनम्रता श्री ईश्वरदास मींगी के जीवन का सब से बड़ा गुण था। लेकिन विनम्र होने के साथ-साथ, **"प्रतिदिन जीवन में उन्नति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहने से "** उनके मन में एक आत्म-विश्वास भी विद्यमान था कि उनके जीवन के संघर्ष की यह कहानी दूसरों के लिए भी नमूना साबित हो सकती है। उन्होंने अपने इन संक्षिप्त से संस्मरणों के पूर्वार्ध में जहां अपने तथा अपने परिवार के मुख्तसर हालात की चर्चा की है वहीं अपनी इस कापी के बाकी हिस्से में उन्होंने, विविध स्रोतों से मिले उन धार्मिक तथा दार्शनिक सद्विचारों की चर्चा भी की है, जिनका मनन करने तथा जिन पर अमल करने से मनुष्य दुर्भावनाओं पर **विजय पाकर सद्भावनाओं के प्रकाश** के मूल्य और महत्व को पहिचानने लगता है। इसी तथ्य की, श्री मींगी निशानदेही कर

रहे थे जब उन्होंने लिखा था कि "मैं अपने में ऐसी कोई विशेषता नहीं पाता जो लिखूँ, **अलबत्तः मैं जीवन-भर यह प्रयत्न ज़रूर करता रहा हूँ कि मैं प्रतिदिन उन्नति करूँ"**। अपने 73 वर्ष के सफल, सन्तुष्ट जीवन के बाद, वे किसी सांसारिक अभ्युदय के लिए तो यत्न कर नहीं सकते थे। अब तो एक ही क्षेत्र था जिसमें वे अब भी "प्रतिदिन उन्नति करने के लिए प्रयत्न कर सकते थे" और वह क्षेत्र था **आध्यात्मिक उन्नति का क्षेत्र**। इसी सात्विक जीवन की यात्रा करने के लिए एक यायावर को अपने आदर्श महापुरुषों के अनुभवों के निष्कर्ष स्वरूप कहे गए सद्विचारों के दीपक जगाने पड़ते हैं। हम यथा-स्थान श्री मींगी जी द्वारा संग्रहीत उन विचारों का भी उल्लेख करेंगे। [देखो इस मोनोग्राफ के अन्त में]

श्री मींगी अपने इसी पहले संस्मरण में अपने जीवन के हालात की चर्चा का श्रीगणेश करते हुए लिखते हैं:

"मैं 13 मग्घर 1943 (विक्रमी) (अर्थात् 28 नवम्बर, 1886 ई.) के दिन रावलपिंडी में पैदा हुआ, जहां मेरे पिता, लाला जगतराम मींगी, राजा पुंछ व उसके (एक) मुसलमान वज़ीर, मियां निज़ाम दीन के खोले हुए सांझे बैंक में मैनेजर का काम करते थे। वहां उनका बहुत (आदर-) मान था। (वे) धार्मिक जीवन गुज़ारते थे। हर रोज़ सुबह उठ कर पाठ-पूजा करते थे। देवी के पुजारी व भक्त थे। मैंने उनमें कोई बुरी आदत न देखी, न सुनी। उनको मासिक वेतन, नकद तो थोड़ा ही मिलता था परन्तु एक अच्छा मकान रहने के लिए, एक नौकर रोटी पकाने को, घोड़ा-गाड़ी चढ़ने के लिए मिले हुए थे और रसोई (के राशन) का खर्च भी मिलता था।"

इस संस्मरण से जो बातें स्पष्ट होती हैं वे ये हैं कि श्री ईश्वरदास मींगी के पिता का नाम लाला जगतराम मींगी था। लाला जगतराम मींगी एक

प्राईवेट बैंक के मैनेजर थे। यह अच्छी सम्मान वाली नौकरी थी । उनकी तनख्वाह शायद ज्यादा नहीं थी लेकिन उन्हें अपने पद के अनुरूप कुछ मुनासिब सुविधाएं ज़रूर प्राप्त थीं। इस बात का भी संकेत मिलता है कि उनका परिवार भी रावलपिंडी में उस समय उनके साथ रहता था। इस संस्मरण से कुछ ऐसी जिज्ञासाएं भी उठती हैं, जिनका समाधान उनके संस्मरण में नहीं मिलता। जैसे-

(i) यह सांझा बैंक रावलपिंडी में कब से काम कर रहा था ?

(ii) एक सौ दस बरस पहले, यह बैंक, किस तरह से लेन-देन निपटाता था ?

(iii) मैनेजर के इलावा बैंक में दूसरे कितने कर्मचारी काम करते थे ?

(iv) बैंक का नाम क्या था ? क्या रावलपिंडी में उस समय और भी सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी बैंक काम करते थे?

(v) पुन्छ के किस राजा ने, पुन्छ के एक सेवा-निवृत्त मंत्री की भागीदारी में यह बैंक चलाया था ?

श्री ईश्वरदास मींगी लिखते हैं कि **"यह सांझी बैंक करीबन (तकरीबन) 1952 (विक्रमी) में**, अर्थात **सन् 1895 ई.** में बन्द हो गया। लेकिन बैंक न तो आसानी से चालू किए जा सकते हैं, तथा न ही आसानी से बंद किए जा सकते हैं। लाला ईश्वरदास का जन्म सन् 1886 ई. को रावलपिंडी में हुआ था, जब उनके पिता लाला जगतराम मींगी इस बैंक के **मैनेजर** के पद पर नियुक्त होकर वहां रहते थे। **सन् 1886 ई.** से **1895 ई.** तक के अर्से में, यह बैंक रावलपिंडी में निश्चित रूप से काम करता रहा है। इस अर्से में पुन्छ का शासक कौन था? यह जानने के लिए मैंने **पुन्छ के इतिहास** की मदद ली।

वहां से मुझे मालूम हुआ कि पुन्छ का वह (पहला) डोगरा शासक था **राजा मोती सिंह**, जिसने सन् 1850 ई. से 1892 ई. तक शासन किया था। राजा मोती सिंह का पिता राजा ध्यान सिंह पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह का वज़ीर-ए-आज़म अर्थात् प्रधान मंत्री था। महाराजा रंजीत सिंह ने पुन्छ को जीत कर सन् 1827 ई. में, अपने **कृपापात्र** डोगरा प्रधानमंत्री राजा ध्यान सिंह को **जागीर** के तौर पर अता किया था। लेकिन अपने औह्दे की मसरूफियत के कारण राजा ध्यानसिंह ने अपनी इस जागीर की देख-भाल और व्यवस्था की जिम्मेवारी अपने बड़े भाई **राजा गुलाब सिंह** को सौंप दी थी। सन् 1850 ई. तक पुन्छ जागीर का इन्तजाम राजा गुलाब सिंह करते रहे। सन् 1843 ई. में राजा ध्यान सिंह लाहौर में कत्ल हो गए। उनकी जगह उनका लड़का कंवर हीरा सिंह पंजाब के प्रधानमंत्री बने लेकिन सन् 1845 ई. में वे भी एक फौजी बगावत में मारे गए। लाहौर से डोगरों का सम्बन्ध समाप्त हो गया। इस तरह 1850 ई. में राजा मोती सिंह, पुन्छ जागीर के बाकायदा राजा बने।

रावलपिंडी में जिस सांझी (सांझे) बैंक का लाला ईश्वरदास मींगी ने अपने संस्मरण में मुख्तसर सा जिक्र किया है उसे बन्द करने की नौबत भी शायद इसी लिए आई होगी क्योंकि राजा मोती सिंह, 42 वर्ष तक पुंछ के इतिहास में, शान्ति, समृद्धि और विकास का एक यादगार ऐतिहासिक शासन-काल पूरा करके स्वर्ग सिधार गए थे। दो-ढाई बरस में अपने धन्धे को समेट कर वह सांझी बैंक भी बन्द हो गया। बालक ईश्वरदास मींगी के पिता लाला जगतराम मींगी फिर बेकार हो गए। रावलपिंडी में उन्हें, उस नौकरी के कारण जो सुविधाएं मिली हुई थीं वे सुविधाएं भी नहीं रहीं। उनके तथा उनके सीमित परिवार के लिए भविष्य फिर एक **प्रश्न-चिह्न** बन कर उन्हे **परेशान** करने लगा। लेकिन बैंक की इस नौकरी में लाला जगत राम मींगी को जितना सुविधापूर्ण और आदर-मान भरा जीवन-काल मिल सका था, उसी बैंक की

नौकरी के कारण उनके जीवन में एक बड़ी परेशानी भी पैदा हुई थी। लाला ईश्वरदास मींगी, अपने इसी पहले संस्मरण में लिखते हैं:

"बैंक का मैनेजर होते हुए उन्होंने (अर्थात् लाला जगतराम मींगी ने), अपने दो भाइयों को, बैंक में से 7000 (सात हज़ार रुपया) उधार दिए (थे) जो उन्होंने वापिस नहीं किये। यह बात मेरे पिताजी के लिए बहुत हानिकारक (सिद्ध) हुई। पिताजी लगभग 25 (पच्चीस) साल तक (अपने इन भाइयों के साथ) मुकद्दमेबाजी में फंसे रहे और दुःखी रहे। हमें इससे यह सबक लेना चाहिए कि बेगाना रुपया घर वालों को हरगिज नहीं देना चाहिए।"

स्वाभाविक है कि लाला जगतराम मींगी ने अपने बैंक से अपने दो भाइयों को इतनी बड़ी रकम बतौर कर्ज़ा दिलाने के लिए, अपनी ज़मानत दे कर बैंक की आवश्यक कार्यवाही पूरी की होगी। ईश्वरदास मींगी ने अपने इन संस्मरणों में अपने इन दो चाचाओं के न तो नाम लिखे हैं, और न इस बात को स्पष्ट किया है कि उन दो भाइयों ने इस (सांझे) बैंक से यह पैसे उधार क्यों लिए थे। जिस भाई ने अपनी जमानत पर, ज़रूरत के वक्त उनको वह रकम उधार दी या दिलवाई थी, उसे, उस ज़मानत के बन्धन से मुक्त करने के लिए, उन्होंने बैंक को वह रकम वापिस क्यों नहीं की? स्वाभाविक था कि बैंक जब बंद होने लगा तो जगतराम मींगी ने, बैंक को वह रकम, सूद के साथ लौटाई होगी। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए लाला जगतराम मींगी ने इतनी बड़ी रकम का जुगाड़ कैसे किया होगा? और फिर परदेस में बेकारी के वे कष्टदायक दिन अपने परिवार को लेकर कैसे गुजारे होंगे! पच्चीस साल तक चलने वाले, इस लम्बे दीवानी मुकद्दमे की कुछ भी तफ़सील लाला ईश्वरदास मींगी ने अपने संस्मरणों में नहीं लिखी।

उन्होंने रावलपिंडी में नौ बरस तक की जो कमसनी की उम्र गुज़ारी थी उसमें उनके साथ कुछ घटनाएं- दुर्घटनाएं भी हुई थीं, जिनकी चर्चा उन्होंने अपने संस्मरणों में की है। एक घटना यह हुई कि साईस से घोड़ा खुलवा कर बालक ईश्वरदास उस पर सवार होकर फौजी छावनी की तरफ निकल गए। रास्ते में एक आदमी को घोड़े का धक्का लगा और वह गिर पड़ा। ईश्वरदास लिखते हैं कि -

"उस राहगीर के इस तरह रास्ते में गिर जाने पर भी मैं वहां रुका नहीं और घोड़े को दौड़ाते हुए घर ले आया। लेकिन मुझे वहां पहुंचकर महसूस हुआ कि (रावलपिंडी के)सदर बाज़ार में घोड़े को दौड़ाना मेरी गलती थी। उन्हीं दिनों, एक दिन मेरी बहन राम देई गुम हो गई। छः -सात घंटे की तलाश के बाद वह मिली।"

शायद 8-9 साल की उम्र के ईश्वरदास के मन में यह विचार बार-बार उठता रहा होगा कि मैंने जो दो गलत काम किए थे यह उसी की सज़ा थी। एक, सदर बाज़ार में घोड़े दोड़ाने का और दूसरा घोड़े के धक्के से गिरने वाले राहगीर को उठाने की बजाय बिना रुके आगे बढ़ जाने का। संस्मरण में वर्णित यह छोटी सी घटना उन्हें जीवन-भर भूली नहीं थी। मनुष्य की याददाश्त भी क्या-क्या करिश्मे दिखाती है! जहां बीती हुई बड़ी-बड़ी अनेक घटनाओं को मनुष्य भुला देता है, वहीं कुछ छोटी-छोटी बातें, जो देखने में महत्त्वपूर्ण नहीं लगतीं, आदमी की स्मृति में अंकित होकर रह जाती हैं।

आठ-नौ बरस के बालक ईश्वरदास को घुड़सवारी का शौक भी था, और इसका खासा अभ्यास भी था। लेकिन इस घटना में महत्वपूर्ण बात यह है कि इस छोटी उम्र में ही उसके मन में, **ठीक क्या है और गल्त क्या**, इन सूक्ष्म बातों में जो बारीक सी रेखा होती है उस को देखने और परखने की योग्यता पैदा होने लगी थी। रावलपिंडी के सदर बाज़ार में घोड़े को दौड़ाते हुए ले जाना

ग़ल्त बात थी, जिस तरह घोड़े का धक्का लगने से गिरे हुए आदमी की मदद न करना भी ग़ल्त बात थी और नन्हें मन में यह संस्कार भी बनने लगा था कि कोई अदृश्य शक्ति हमारे ग़ल्त कामों के लिए हमें दंड भी देती है। अन्यथा ईश्वरदास की नन्हीं बहन रामदेई गुम क्यों हो जाती और मींगी परिवार के लोगों को, उसे ढूंढने के लिए पांच-छः घंटे परेशान क्यों होना पड़ता? इसी समय की एक और बात को भी बालक ईश्वरदास मींगी, सत्तर बरस की उम्र हो जाने पर भी भुला नहीं पाया था। ईश्वरदास जी ने इस बात का उल्लेख यूँ किया है: **"दूसरी बात यह भी याद है कि मैं वहाँ के स्कूल में जब तीसरी जमात में पढ़ता था तो पिता जी मुझे आधे रास्ते तक छोड़ने आते थे।"**

उनकी इस बात से, पिता और पुत्र दोनों के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। पिता के मन में अपने पुत्र के लिए वात्सल्य तथा उसकी शिक्षा के प्रति उसकी एक **आदर्श आकांक्षा** थी कि ईश्वरदास के मन में अपने स्कूल, अपनी शिक्षा तथा पढ़ाने वालों के प्रति आदर की भावना जड़ पकड़े। बचपन की सही शिक्षा, बच्चों की भावी शिक्षा के लिए पक्की बुनियाद का काम देती है। और ईश्वरदास मींगी का आगे चल कर स्कूलों तथा कालेजों की श्रेणियों में हमेशा अग्रिम पंक्ति में रहने के पीछे, क्या उसी पक्की बुनियाद का योगदान प्रमुख कारण नहीं रहा होगा? यह संयोग होता बड़ा दुर्लभ है कि बच्चों के अभिभावकों के मन में अपनी सन्तान के लिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार, सुविधाएं जुटाने की ललक हो, और बच्चे भी अपने अभिभावकों के इन कमनीय स्वप्नों को अपने पुरुषार्थ से साकार कर दिखाएं।

रावलपिंडी में मींगी-परिवार इसलिए रहा था, क्योंकि वहां लाला जगतराम मींगी एक प्राईवेट बैंक में मैनेज़र के तौर पर नियुक्त हुए थे। इन नौ वर्षों में मींगी परिवार का जीवन सुखमय रहा। ईश्वरदास, जिसका जन्म रावलपिंडी में ही हुआ था, अब नौ वर्ष का हो गया था। उसने वहां के किसी

प्राईमरी स्कूल से तीसरी जमात पास कर ली थी। लेकिन बैंक बंद हो गया तो मींगी परिवार के लिए, फिर संघर्ष के दिन आ गए।

लाला ईश्वरदास अपने संस्मरण में लिखते हैं कि:

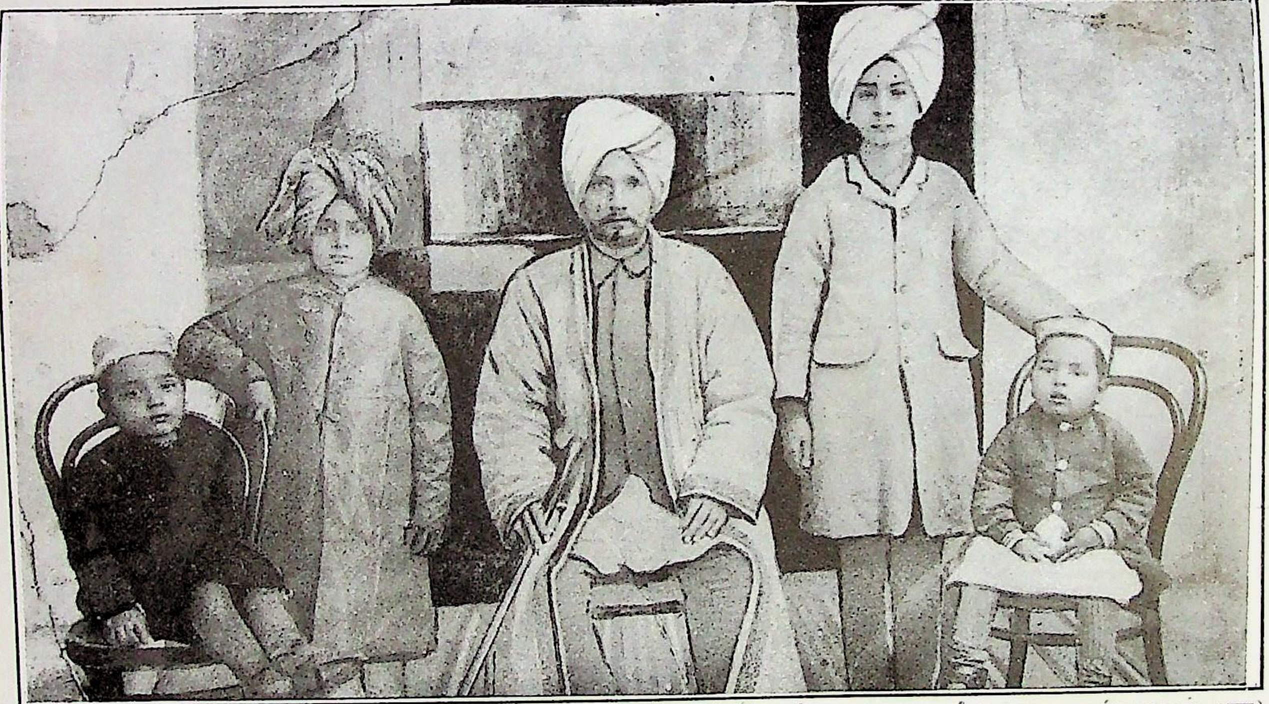
"अब मेरी उम्र नौ (9) वर्ष की हो गई थी। पिता जी निकम्मे (बेकार) हो गए थे। इस लिए हम लोग जम्मू आ गए। मेरे बड़े भाई साहब लाला रामदास की शादी हो चुकी थी। पिता जी ने मेरी शादी भी कर दी। (शादी के बाद) जम्मू के मिशन स्कूल में, चौथी जमायत में मुझे दाखिल करवा दिया गया। जम्मू में हम लोग ताया साधु राम मींगी के घर में रहने लगे।"

"मेरी भरजाई (भाई रामदास जी की पत्नी) को जोड़ों में दर्द की तकलीफ थी, और मेरी पत्नी के गले में हजीरें थीं। पिता जगत राम मींगी इन दोनों (बीमार बहुओं) को स्यालकोट ले गए और वहां दोनों का ईलाज कराने लगे। मेरी माता भी उनके साथ गई थीं। मैं ताए के घर में रहता था। घर में हर तरह की तंगी थी। मुझे शाम को भूख लगती तो सुबह का बनाया हुआ बिहा (बासी) ख़मीरा लेकर लून-मर्च से खाया करता था। मेरी बीबी, जो दीवान नरसिंह दास कोहली की लड़की थी, कुछ समय के बाद मर गई । उससे मैंने सिर्फ़ एक दफ़ा, एक-आध मिनट बात की थी। मैंने उससे उसका हाल पूछा था।

इस शादी से सिवाए खर्च व दुःख के और कुछ भी हासिल नहीं हुआ था। छोटी उम्र में यदि मेरी शादी न की होती तो (शादी पर ख़र्च किया गया) वह रुपया घर में खुराक पर ख़र्च होता तो हमारा जिस्म ठीक परवरिश पाता।"

लाला रामदास, ईश्वरदास मींगी के बड़े भाई थे। ईश्वरदास मींगी के

स्मृतियों के झरोखे से



बाएं से दाएं–लाला भगवान् दास जी (भ्राता), लाला ईश्वर दास जी, लाला जगतराम जी (पिता श्री), लाल रामदास जी (भ्राता), लाला शिवदास जी (भ्राता)

दो छोटे भाई भी थे। एक थे श्री भगवान दास मींगी और दूसरे थे श्री शिवदास मींगी। लेकिन यह मालूम नहीं कि इन चारों भाइयों में उम्र का कितना-कितना फर्क था। लाला जगतराम मींगी के बड़े भाई लाला साधु राम सचमुच ही कोई साधु पुरुष थे जिन्होंने अपने बेकार छोटे भाई और उसके परिवार को अपने घर में रहने की सुविधा दी। लेकिन लाला ईश्वरदास मींगी के इस संस्मरण से हमें इस बात की जानकारी नहीं मिलती कि लाला साधुराम की अपनी गुजर-बसर कैसे चलती थी ? उनका घर, जम्मू में कहां, किस मुहल्ले में था ? और यह भी कि उनके अपने परिवार में कौन-कौन लोग थे ?

छोटी उम्र का विवाह :

यह बड़े दुःख का विषय है कि उन्नीसवीं सदी के उस अन्तिम चरण में, डोगरा समाज में बाल-विवाह की यह असामाजिक परम्परा विद्यमान थी। ईश्वरदास जी ने लिखा है कि बैंक की नौकरी छूट जाने पर जब उनके पिता लाला जगतराम मींगी जम्मू लौटकर अपने बड़े भाई के घर में रहने लगे तो उनकी आयु नौ वर्ष की थी। उसने तीसरी जमायत पास कर ली थी। रावलपिंडी से वापिस जम्मू पहुँचकर, मींगी परिवार में जो एक बड़ा शुभ मंगल कार्य सम्पन्न हुआ, वह था नन्हें **ईश्वरदास** की शादी। ईश्वरदास उस समय शायद अपनी उम्र के दसवें साल में था। उसके बड़े भाई रामदास की शादी पहले हो चुकी थी। रामदास, ईश्वरदास से शायद दो-तीन बरस बड़ा होगा। लड़कों की उम्र यदि यह रही हो तो उनकी बीवियां तो उनसे एक-दो बरस ज़रूर छोटी रही होंगी।

लाला जी ने जब अपने ये संस्मरण लिखने शुरू किए तो उनकी आयु 72-73 वर्ष थी। उन्होंने अपने परिवार में होने वाली इन छोटी उम्र के बच्चों की शादी पर अपनी कोई सामाजिक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्होंने सिर्फ यह लिखा है कि यदि उनकी यह शादी न होती तो इस शादी पर खर्च होने वाले

दो छोटे भाई भी थे। एक थे श्री भगवान दास मींगी और दूसरे थे श्री शिवदास मींगी। लेकिन यह मालूम नहीं कि इन चारों भाइयों में उम्र का कितना-कितना फर्क था। लाला जगतराम मींगी के बड़े भाई लाला साधु राम सचमुच ही कोई साधु पुरुष थे जिन्होंने अपने बेकार छोटे भाई और उसके परिवार को अपने घर में रहने की सुविधा दी। लेकिन लाला ईश्वरदास मींगी के इस संस्मरण से हमें इस बात की जानकारी नहीं मिलती कि लाला साधुराम की अपनी गुजर-बसर कैसे चलती थी ? उनका घर, जम्मू में कहां, किस मुहल्ले में था ? और यह भी कि उनके अपने परिवार में कौन-कौन लोग थे ?

छोटी उम्र का विवाह :

यह बड़े दु:ख का विषय है कि उन्नीसवीं सदी के उस अन्तिम चरण में, डोगरा समाज में बाल-विवाह की यह असामाजिक परम्परा विद्यमान थी। ईश्वरदास जी ने लिखा है कि बैंक की नौकरी छूट जाने पर जब उनके पिता लाला जगतराम मींगी जम्मू लौटकर अपने बड़े भाई के घर में रहने लगे तो उनकी आयु नौ वर्ष की थी। उसने तीसरी जमायत पास कर ली थी। रावलपिंडी से वापिस जम्मू पहुँचकर, मींगी परिवार में जो एक बड़ा शुभ मंगल कार्य सम्पन्न हुआ, वह था नन्हें **ईश्वरदास** की शादी। ईश्वरदास उस समय शायद अपनी उम्र के दसवें साल में था। उसके बड़े भाई रामदास की शादी पहले हो चुकी थी। रामदास, ईश्वरदास से शायद दो-तीन बरस बड़ा होगा। लड़कों की उम्र यदि यह रही हो तो उनकी बीवियां तो उनसे एक-दो बरस ज़रूर छोटी रही होंगी।

लाला जी ने जब अपने ये संस्मरण लिखने शुरू किए तो उनकी आयु 72-73 वर्ष थी। उन्होंने अपने परिवार में होने वाली इन छोटी उम्र के बच्चों की शादी पर अपनी कोई सामाजिक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्होंने सिर्फ यह लिखा है कि यदि उनकी यह शादी न होती तो इस शादी पर खर्च होने वाले

पैसे बच जाते, और उन पैसों से घर में खाने-पीने की सुविधा हो जाती और उनकी शारीरिक दशा में कुछ सुधार होता।

22.9.1959 के दिन अपने संस्मरण में लाला ईश्वरदास मींगी लिखते हैं कि:

"जम्मू में जो दो साल (मैंने) चौथी और पांचवीं (जमातों) में गुज़ारे उस समय की कुछ घटनाएं लिखता हूँ। (पहली घटना): एक दिन गली के लड़के 'रानी के तालाब' पर नहाने गए।

मैं भी (उनके साथ) चला गया। लड़कों ने तालाब की बुर्जियों पर से पानी में छलांगें लगाई। उनकी देखा-देखी मैंने भी एक बुर्जी से छलांग लगा दी। लेकिन मुझे तैरना नहीं आता था। मैं डूबने लगा तो चिल्लाया। कुछ लड़के तैरते हुए मेरे पास आए और उन्होंने मुझे डूबने से बचा लिया।

दूसरी बात जो उस वक्त की याद है वह यह है कि मेरे घर के पास ही मेरा एक जमाती रहता था। वह लड़का कभी-कभार अपने बाप का हुक्का पिया करता था। मैंने भी वहाँ हुक्का पीना सीख लिया। क्योंकि मैं उसी के साथ खेलने, उसके घर जाया करता था।

और तीसरी बात यह कि मिशन स्कूल का एक मास्टर था, उसने मुझे अपने घर में बुलाया कि बाज़ार से कुछ सौदा ला देना। मैं वहाँ गया तो वो मेरे साथ छेड़खानी करने लगा। मैं डर गया और वहाँ से भाग आया। फिर कभी उसके घर नहीं गया। इसी वास्ते मैं कहा करता हूँ कि छोटी उम्र के बच्चों को स्कूल के किसी मास्टर के घर नहीं जाने देना चाहिए और न ही अपनी उम्र से बड़े लड़कों के साथ मिलाप रखने देना चाहिए। इख़्लाक बिगड़ते देर नहीं

लगती और माता-पिता को उस समय पता लगता है जब बदनामी होने लगती है"।

बालक ईश्वरदास जम्मू के मिशन स्कूल में दो वर्ष तक पढ़ते रहे थे। इन दो सालों में और भी कई बातें उनके जीवन में घटी होंगी लेकिन, साठ बरस पहले बीते हुए अपने लड़कपन के ज़माने की सिर्फ तीन बातें ही उन्हें उल्लेख-योग्य मालूम हुईं। इस संस्मरण में यह बात भी रेखांकित करने योग्य है कि उन्होंने जम्मू की एक-दो जगहों की, नाम लेकर निशानदेही की है। उनमें से पहली जगह तो है रानी का तालाब। (पुराने)जम्मू के मोती बाज़ार के करीब ही था यह तालाब। सन् 1945-46 के लगभग जम्मू शहर में पं. जवाहर लाल नेहरू, सरहद्दी गान्धी अब्दुलग़फारखाँ और शेरे-कश्मीर शेख महम्मद अब्दुला आए थे। शहर में एक बड़ा जुलूस निकाला गया था और जुलूस रानी के तालाब पर आकर रुका और लोग इसी तालाब की सीढ़ियों पर नेताओं के भाषण सुनने के लिए बैठ गए थ। तालाब की दो बुर्जियों के नीचे बनी दीवारों पर लम्बी-लम्बी शहतीरियां रखकर 'प्लेटफार्म' (मंच) बनाया गया था।

उस तालाब की जगह अब वहां छोटे, टीले की शक्ल का एक छोटा सा पार्क बन गया है जिसका नाम **रानी-पार्क** है। समय की लीला है । कभी **सन् 1820 से पहले** यहां, न यह 'रानी का तालाब' था, न यह खूबसूरत मंदिर था, और न ही 'दीवानों का मन्दिर' नाम से प्रसिद्ध वह प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसके साथ लगे मंडुए में प्रतिवर्ष नवरात्रों में रामलीला खेली जाती है।

रानी का तालाब अब नहीं रहा लेकिन उसकी कहानी अभी कुछ देर और जीवित रहेगी।

दूसरी बात श्री मींगी ने अपने सहपाठी, पड़ोसी लड़के के घर में

तम्बाकू पीने की बुरी आदत पड़ जाने के बारे में लिखी है। लेकिन उन्होंने यह नहीं लिखा कि वे इस दुर्भाग्यपूर्ण लत के जाल में से छूटे कैसे ? अब चूंकि उनके लिखे संस्मरणों को मैंने पढ़ा है इसलिए मुझे विश्वास है कि कुदरत के परोक्ष हाथ, बालक मींगी को इस तरह के गड्ढों में गिरने से बचाते रहे हैं। अर्थात् कुदरत स्वयं, उसके विकास में दिलचस्पी ले रही थी।

तीसरी बात, बच्चों पर, दुराचारी लोगों (उनमें शिक्षा-संस्थाओं के अध्यापक भी शामिल हैं) के द्वारा किए जाने वाले गर्हित अनाचार के प्रयासों की है। बालक ईश्वरदास की सहज 'बुद्धि' ने उसे उस खतरे से सावधान कर दिया, और उस नन्हें बालक की तत्काल की गई प्रतिक्रिया ने, जिसने उसे फौरन वहाँ से भाग जाने की प्रेरणा दी, उसे उस आक्रमण से बचा लिया। ये तीनों बातें अपनी-अपनी जगह, उस छोटी आयु के बालक के लिए, काफी महत्त्व रखती थीं, इसी लिए लाला ईश्वरदास मींगी को, अपने जीवन के संध्याकाल में भी उनका स्मरण था।

बचपन के पहले नौ बरस, ईश्वरदास मींगी ने रावलपिंडी में कुछ सुख-सुविधा पूर्ण परिस्थितियों में गुजारे थे। उसके बाद जम्मू में बीते उनके ये दो बरस जैसे बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थितियों में गुज़रे। इसके बाद एक बार फिर उस मींगी परिवार के हालात में कुछ सुधार हुआ। लाला ईश्वरदास अपने संस्मरण में लिखते हैं:-

"इस तरह दो साल गुज़र गए। तब पिता जी को (रावलपिंडी बैंक के हिस्सेदार) मियां निजामदीन के लड़के मियाँ फिरोज़दीन ने एक सौ रुपया मासिक (वेतन) देकर फिर रावलपिंडी भेज दिया।

ताकि वहाँ राजा साहब पुंछ (के वारिसों) से जो उनका तकसीम बैंक का मुकद्दमा चल रहा था, उसकी वह पैरवी करें। उस वक्त

मैंने भी (मिशिन स्कूल जम्मू से) पांचवीं जमात का इम्तहान पास कर लिया था। इस लिए पिता जी हमें भी अपने साथ रावलपिंडी ले गए। हम बैशाख या जेठ 1954 (अप्रैल या मई 1897 ई.) में रावलपिंडी पहुंचे। हम इस बार वहां तीन साल तक रहे। मैंने छठी, सातवीं, और आठवीं, जमायतों की पढ़ाई वहाँ पूरी की। मैं हर साल पास हो जाता रहा। मुझे अच्छी तरह याद है कि गर्मियों में मैं स्कूल से आकर खाना खाकर एक या आधा घंटा आराम करने के बाद, खुद भी पढ़ने लगता और अपने छोटे (दो) भाइयों को भी पढ़ाता। छः बजे तक पढ़ते रहने के बाद हम लोग, मकान के बाहर सड़क के किनारे लगे हुए नलके से घर के लिए पानी भरते थे और फिर उसके बाद कुछ देर खेलते भी थे।

मुझे पढ़ने की बड़ी लग्न थी। लेकिन भाई साहब रामदास पढ़ने में दिलचस्पी नहीं रखते थे। पिता जीने उनको डी. ए. वी. स्कूल लाहौर में दाख़िल करवाया और बोर्डिंग में भी उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया। लेकिन पढ़ाई में उनकी रुचि नहीं थी। मिडिल की परीक्षा में फेल हो गए। स्कूल छोड़ दिया और नौकरी ढूंढने लगे। कुछ समय के बाद वहाँ वे 'कमिसरेट' के दफ्तर में तीस रुपये महीने पर नौकर हो गए। यह दफ्तर हमारे घर से दूर था। एक दिन मैंने माता से, सर्दियों में पहनने-योग्य सुर्ख रंग का रेश्मी रूईदार डोगरा कुरता-पाजामा लेकर पहना और भाई जी के दफ्तर में पैदल ही चला गया। वहां उन्होंने (मुझे) मिठाई खिलाई। इन तीन सालों के अर्से में भाई जी की पहली बीवी धनदेवी (चौधरी दुनीचन्द की लड़की) बहुत क्लेश पाने के बाद मर

गई। माता जी को उसकी बड़ी खिदमत करनी पड़ी। भाई साहब ने उसकी मौत पर एक कविता भी लिखी थी, जो मुझे अब याद नहीं है। भाई साहब को कविता लिखने का शौक था। लेकिन शायद तंगी के कारण उसमें योग्यता न पा सके। उनकी यह आर्ज़ी नौकरी ख़त्म हो जाने पर वे ड्राईंग सीखते रहे, लेकिन उसको भी छोड़ दिया। उनकी अब दूसरी शादी भी हो चुकी थी। उनकी नई बीवी भी रावलपिंडी में आ गई थी। भाई साहब ने अब जुराबें बनाने की मशीन खरीद ली थी। जुराबें बनाने वाले एक आदमी को नौकर रखा। एक दुकान किराए पर ली। जुराबों के इस धन्धे के साथ-साथ वे लाहौर जाकर अमरीका से आए हुए पुराने कोट खरीद लाते और रावलपिंडी में बेचते।

इस तरह से समय गुज़रने लगा। मैं वहां एक स्कूल में पढ़ता था, जिसका नाम था 'श्रेष्ठ नीति शाला स्कूल'। उस वक्त की एक घटना मुझे आज भी याद है। स्कूल जाने वाले रास्ते में एक दुकान पर कुलफ़ियाँ बिकती थीं। एक दिन दुकानदार मुझे बोला, "राजा जी, आज एक कुल्फी के पैसे बटाओ ना"। परन्तु मेरे पास पैसे नहीं थे। मैं टाल कर निकल गया फिर उस रास्ते से जाना बन्द कर दिया। (उन दिनों) मुझे तीन पैसे रोज मिलते थे। मैंने वे पैसे जोड़ने शुरू किये। जब दो आने हो गए तो उस दिन कुल्फी वाले की दुकान पर जाकर मैंने कुल्फी खाई। और फिर दुकान वाला रास्ता मैंने छोड़ दिया। जब मैं सातवीं जमात में पढ़ता था तो मुझे दो पैसे रोज़ मिलते थे। एक दिन मैंने पिता जी को लिख कर एक दरखास्त दी कि मुझे दो पैसे रोज देने की बजाए, महीने के आख़ीर में सवा रुपया (1.25) इकट्ठा दे

दिया करें। मैं कलम, पिन्सल, स्याही वगैरा अपने पैसों से खरीद लिया करूंगा। और जब मैं आठवीं में पढ़ता था तब मैंने (अपने जेब-खर्च के) पैसे जोड़ कर पिता जी को दिए कि कुछ पैसे अपनी गिरह से डालकर मुझे एक संदूकची ला दें। संदूकची आ गई तो मैं बाज़ार से दो आने की सौगी (किशमिश) खरीद कर ले आता और सन्दूकची में रखता और थोड़ी-थोड़ी करके कई दिन तक खाता रहता। ये बातें मैंने इसलिए लिखी हैं कि ज़ाहिर हो कि मैंने शुरू से ही, किफ़ायत से खर्च करने की आदत सीख ली थी।

उस समय हमारी रियासत पर महाराजा प्रतापसिंह का राज था। एक बार वे श्रीनगर से बरास्ता रावलपिंडी जम्मू जा रहे थे। पिता जी उन्हें रावलपिंडी में मिले और भाई साहब रामदास के लिए कोई नौकरी देने की दरखास्त पेश की, जिस पर उन्होंने हुकम दिया कि इसे तीस रुपया महीने की नौकरी दी जावे। जम्मू में मशीरमाल पिता जी के वाकिफ़ थे, क्योंकि वे रावलपिंडी में जज रह चुके थे। उनकी मदद से भाई साहब महकमा तालीम में तीस रुपये महीना की तनख्वाह पर क्लर्क हो गए। इधर मैं भी आठवीं जमात में पास हो गया। उधर मियाँ फिरोज़दीन की दी हुई पिती जी की नौकरी भी ख़त्म हो गई। इसलिए पिता जी ने हम सब को जम्मू भेज दिया, और खुद हरिद्वार, कुछ अरसा तपस्या करने चले गए कि कहीं कोई नौकरी फिर मिल जाए।

जम्मू आने से पहले की एक-दो बातें लिखता हूँ।

(1) एक बार हमारे घर में मांस पकाया गया। हम सब ख़ाना खा रहे थे कि मैंने कह दिया कि मांस खाना खराब बात है। सब ने

कहा तो मत खाओ। उस दिन के बाद मैंने कभी जानबूझ कर मांस नहीं खाया। एक दो दफा खाया भी तो गल्ती से। फिर जब (मेरा विवाह हुआ और) ओम प्रकाश की माता हमारे घर आयी तो वह मांस से इतनी घृणा करती थी कि घर की रसोई में मांस पकना बन्द हो गया।

उन्हीं दिनों हमारे घर में एक नौकर जवाहरसिंह, सात रुपए माहवार पर काम करता था। मुझे शक हुआ कि वह कुछ आटा चुरा कर ले जाता है। मैं उसकी ताक में रहा, और उसको रंगे हाथों पकड़ लिया। वह बेचारा बहुत शर्मिन्दा हुआ। अब कई बार मुझे ख्याल आता है कि थोड़ी तनख्वाह की वजह से ही वह आटा चुराता था। हमारे घर में भी गुज़ारा तंगी से ही होता था। मुनासिब यही था कि उसकी तनख्वाह बढ़ा दी जाती। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। आदमी चोरी नहीं करता उसकी गरीबी उसे चोरी करने पर मजबूर करती है।

हमारे पिता जी, हमारी ख्वाहिशें पूरी करने के लिए कई बार कष्ट भी उठाते थे। जब मैं आठवीं में पढ़ता था तो मैंने एक छोटा सा कुत्ता पाल रखा था। सर्दियों के दिनों में रात को मैं उसे सीढियों पर सुला देत्ता था। वह वहां पाखाना कर देता था। पिता जी सुबह जल्दी उठकर नहा-धोकर पूजा-पाठ करते थे। वे उठकर सीढ़ियां लांघ कर रसोई में जाकर नहाते थे। लेकिन कुत्ते की गन्दगी को हमारी ख़ातिर बर्दाश्त करते थे।

पिता जी पाठ करते हुए श्लोक पढ़ते थे, साथ ही फ़ारसी भाषा के कुछ शेर भी बोलते थे जो मैंने भी सीख लिये थे। जो अब तक भी मैं रोज़ दुहराता रहता हूं। शेर ऐसे हैं:

(i) मुश्किले नेस्त के आसां न शबद,
मर्द बायद के हरासां न शबद।

मतलब- कोई मुश्किल ऐसी नहीं होती जो आसान न हो जाए मगर आदमी को चाहिए कि हैरान (परेशान) होकर अपनी हिम्मत न हारे।

(ii) मिनशीं तुर्श तो अज़ गर्दिशे आयाम सबर,
गर्चे तल्ख़ अस्त.व लेकिन वर शीरीं वारद।

मतलब- दुनियां के दुखों से दुखी न हो। अपना सबर कायम रख। अगरचे सबर तल्ख़ और कड़वी चीज़ होता है परन्तु इसका फल मीठा होता है।

ये शेर बार-बार पढ़ने से दिल पर इसका अच्छा असर होता है।

सन् 1901 ई. में आठवीं जमात का नतीजा निकला। मैं भागा-भागा घर आया (और) दूर से ही चिल्लाने लगा। पास-पास ! मेरी माता बड़ी खुश हुई।

इसके बाद हम जम्मू आ गए और मैं श्री रणबीर हाईस्कूल (**S. R. High School, Parade Ground**), में नौंवी जमात में दाखिल हो गया। यह बात शायद मई 1901 ई. की है, यानी 15 आषाढ़ 1958 (विक्रमी) की। हम लोग ताया जी के घर में रहते थे। लेकिन अलग रसोई में अपना खाना पकाते थे। ताया जी का, राजा पुन्छ से कोई मुकद्दमा चल रहा था। मेरी माता से ताया जी सोना बेचने को मांगते थे। लेकिन (सोना) थोड़ा-बहुत (जो) था वो कहां बेचने के लिए दिया जा सकता था? मुझे याद है कि तंगी की वजह से मैं, और (मेरे छोटे भाई)

भगवानदास और शिवदास इकट्ठे ही सोया करते थे। मैं आठवीं में पढ़ता था जब मेरी बहन रामदेई की शादी हो गई, और मेरे 16 साल के होते भगवानदास और शिवदास की शादी भी कर दी गई थी। ये सब शादियां हमारी गरीबी के कारण हुईं थीं। पिता जी (भी) शायद इस बारे में बेबस थे। क्योंकि उस वक्त रिवाज छोटी उम्र में (लड़के-लड़कियों की) शादी करने का था। हमारे पिता जी रावलपिंडी जैसी जगह में रहते थे, लेकिन उसका भी उन पर यह असर नहीं पड़ा कि बच्चों की शादियां नहीं करनी चाहिए।

जिस साल जम्मू आकर (सन् 1901 में) मैं रणबीर हाईस्कूल में,नौवीं जमायत में दाखिल हुआ था उसी साल जम्मू में सख्त प्लेग (Plague) फूटी (फैली)। शहर के लोग शहर छोड़कर भाग गए। हम सब भाइयों को लेकर हमारी माता जी रियासी चले गए। भाई साहब रामदास किसी दफ्तर में नौकर थे, वे सतवारी चले गए।

हम लोग कुछ अर्सा रियासी में रहे। वहाँ हमारे एक चाचा लुड्डन मल्ल भी ज़िन्दा थे। कुछ काम-धन्धा करते हों, ऐसा लगता तो नहीं था। मगर हमें रोटी-पानी खिलाते रहे। अपना तम्बाकू हम लोगों से छिपा कर रखते थे ताकि हम पीकर उसे ख़त्म न कर दें।

रियासी वाले मकान में एक बैठक थी, एक बड़ा दालान था, उसके साथ एक कोठी व एक रसोई थी। यह हिस्सा बड़ा खुला था। सभी कमरे बड़े-बड़े थे। मकान का सहन भी अच्छा था। मकान के साथ एक 'बाड़ी' भी थी जो ख़ासी लम्बी-चौड़ी

थी। हमारी दादी भी ज़िन्दा थी। मुझे 'मंगा' कह कर बुलाती थी। मुझ से प्यार करती थी। चाचा लुड्डुनमल्ल अक्सर बीमार रहते थे। उसे पेट की बीमारी थी। उसकी बीवी, हमारी चाची, बड़ी दुबली-पतली, खूबसूरत और अच्छे स्वभाव की औरत थी। मेरा मामा, पौनी (रियासी के पास एक मशहूर छोटा कस्बा) से आया और हमें पौनी ले गया। उन्होंने मेरी माता को दो सेर घी अलहदा दे दिया ताकि हमें खिलाया करे। नानी तथा मामी, दोनों अच्छे स्वभाव की थीं। हमारे घर (ननिहाल) के पीछे पानी की एक कूहल बहती थी। सुबह हम तीनों एक नाड़े (झरणे) पर नहाने जाते।

लाला नरसिंह दास कपाही की माता उन दिनों पौनी में ही थी। उन्होंने एक दिन गरी (नारियल) के तेल में, जो घी की तरह ही नज़र आता है, परांठे बना कर हमें खिलाए।

इस तरह सन् 1901 ई. बीता।

लाला ईश्वरदास मींगी के संस्मरणों में से यह एक लम्बा अंश मैंने ऊपर उद्धृत किया है। मैंने इसे मुख्तसर करके लिखना मुनासिब नहीं समझा। क्योंकि इन संस्मरणों में (आज सन् 1997 ई. से) सौ साल पहले की परिस्थितियों का संकेत मिलता है। इनमें, एक छोटे परिवार की कहानी कही गई है, जिसमें लगातार चलने वाले एक संघर्ष की दास्तान है। दो वर्ष बेकार रहने के बाद ला. जगतराम मींगी को फिर रावलपिंडी में सौ रुपया महीने के वेतन पर, उसी पुराने बैंक से जुड़ा एक काम मिल गया। लेकिन इस बार, पहली नौकरी वाली सुविधाएं प्राप्त नहीं थीं। और उनके बच्चे अब कुछ बड़े हो गये थे। छोटी उम्र की शादी की वजह से भी कुछ परेशानियां पैदा होती रही थीं। जैसे कमसन उम्र की बहुओं की दुस्साध्य लम्बी बीमारियें, बार-बार बच्चों के स्कूल बदलने की

मजबूरी, और सब से बड़ी और बुनियादी कठिनाई, जिसका मूल कारण था परिवार की ग़रीबी। लेकिन इन कठिन परिस्थितियों में, हमारे कथा-नायक बालक ईश्वरदास मींगी की, पढ़ने-लिखने की सराहनीय अभिरुचि और उसमें विकसित होने वाले एक होनहार नौजवान की सम्भावनाएं कम न हुईं। बहुत कम बालकों में इस तरह का आत्म-विश्वास और अपनी परिस्थितियों से तालमेल बिठाकर, अपनी पढ़ाई की, अपने अनुजों (छोटे भाइयों) की पढ़ाई की, और अपने घर के काम-काज में योगदान देने की ऐसी समझ देखने को मिलती है, जैसी बालक ईश्वरदास मींगी में विकसित हो रही थी। मैं उनके संस्मरण के ये शब्द दुहराना चाहता हूँ कि:

> **"मैं हर साल पास होता रहा। मुझे अच्छी तरह याद है कि गर्मियों में , मैं स्कूल से आकर, खाना खाकर, एक या आधा घंटा आराम करने के बाद, खुद भी पढ़ने लगता और अपने छोटे भाइयों को भी पढ़ाता। छैः बजे तक पढ़ते रहने के बाद हम लोग, मकान के बाहर सड़क के किनारे लगे हुए नलके से घर के लिए पानी भरते और फिर उसके बाद खेलते भी थे। मुझे पढ़ने की बड़ी लग्न थी"।**

"होनहार विरवान के होत चीकने पात"। बालक ईश्वरदास इसी कहावत का एक दृष्टान्त था। उसके बड़े भाई शिक्षा की इस डगर पर चलने में नाकारा साबत हुए। वे मिडिल की परीक्षा भी पास नहीं कर सके। ईश्वरदास के दो छोटे भाई पढ़ने में कैसे थे, इस जिज्ञासा का समाधान उनके संस्मरणों से नहीं मिला। इन भाइयों के साथ उनके सम्बन्ध किस रूप में विकसित हुए, इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी ईश्वरदास मींगी ने नहीं किया। आगे के संस्मरणों में, उन्होंने एक-दो बार अपने भाइयों के विषय में जो संक्षिप्त संकेत दिए हैं, उनकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

स्कूल जाते हुए रास्ते में कुल्फ़ी वाली दुकान का ज़िक्र भी बालक ईश्वरदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाला है। अपने संस्मरण में उन्होंने उस घटना का निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि-

"ये बातें मैंने इस लिए लिखी हैं कि ज़ाहिर हो कि मैंने शुरू से ही, किफ़ायत से खर्च करने की आदत सीख ली थी।"

उनके संस्मरण की यह बात भी महत्वपूर्ण है कि-

"हमारे पिता जी, हमारी ख़्वाहिशें पूरी करने के लिए कई बार कष्ट भी उठाते थे।"

ईश्वरदास के पिता ला. जगतराम मींगी के इस, पैत्रिक उत्तरदायित्व को निभाने के गुण का उल्लेख हम पीछे भी कर आए हैं। बच्चे के मानसिक विकास पर उसके परिवार का गहरा असर होता है। उसके परिवार में, छोटी उम्र में बच्चों की शादियां कर देने की एक ग़ल्त परम्परा उस समय मौजूद थी।

"मैं आठवीं में पढ़ता था जब मेरी (छोटी) बहन रामदेई की शादी हो गई और मेरे 16 साल के होने पर (तब ईश्वरदास दसवीं जमात में पढ़ता था) भगवानदास और शिवदास की शादी भी कर दी गई। ये सब शादियां हमारी गरीबी के कारण हुईं थीं। पिता जी भी शायद इस बारे में बेबस थे। क्योंकि उस वक्त रिवाज छोटी उम्र में शादी करने का था।"

मींगियों के एक ही परिवार में चार लड़कों और एक लड़की की शादी, विवाह के योग्य आयु होने से कई वर्ष पहले ही कर दी गई थी। बीसवीं सदी ईसवी का प्रारम्भ हो चुका था। लेकिन समाज में अभी प्रबुद्ध चेतना का जागरण नहीं हुआ था।

वैसे साधारण तौर पर जम्मू प्रदेश में **बाल-विवाह** की वैसी परम्परा या रिवाज शायद नहीं रहा, जैसे भारत के **राजस्थान** आदि प्रदेशों में रहा है,

और शायद अब भी कई जातियों, कबीलों में मौजूद है। लेकिन मींगी परिवार में इस कुप्रथा का **इतने व्यापक रूप में** पाया जाना, एक असाधारण बात प्रतीत होती है। उसका विश्लेषण करते हुए ला. ईश्वरदास मींगी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि:-

> **"ये सब शादियां, हमारी गरीबी के कारण हुई थीं। पिता जी भी शायद इस बारे में बेबस थे, क्योंकि उस वक्त रिवाज छोटी उम्र में (बच्चों की) शादियां कर देने का था।"**

लेकिन मींगी परिवार तो कोई देहाती परिवार नहीं था। जम्मू शहर, रियासत जम्मू-कश्मीर की शीतकालीन राजधानी था। डोगरा सामन्तों के महल यहां थे। शिक्षा का कुछ-कुछ उजाला भी हो रहा था।

ला. ईश्वरदास के पिता, ला. जगतराम शिक्षित आदमी थे. तभी तो वे नौ दस वर्ष तक एक बैंक के **'मैनेजर'** के पद पर कार्य करते रहे थे। इसलिए यह कहना सही नहीं होगा कि मींगी परिवार ने गरीबी के दबाव में आकर अपने बच्चों के विवाह छोटी उम्र में किए थे। यह बात तर्क-संगत नहीं लगती। गरीबी के कारण तो अक्सर लड़के या लड़की का विवाह होने में रुकावटें और अड़चनें आ जाती हैं। गरीबों के लड़के-लड़कियां प्राय: विवाह-बन्धन से वंचित रह जाते हैं।

खैर, यह समाज-शास्त्रियों के विचारणीय विषय हैं। उन्नीसवीं सदी ईसवी में तथा बीसवीं सदी ईसवी के शुरू तक के डोगरा-समाज की **सामाजिक स्थिति** का **इतिहास** और उसका **विश्लेषण** प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व उन्हीं पर आता है।

लाला ईश्वरदास अपने संस्मरण में आगे लिखते हैं:-

> **"अब बसाख 59 (अर्थात् अप्रैल 1902 ई.) आने वाला था। सालाना इम्तेहान के दिन थे। मुझे पढ़ने की ख़्वाहिश थी। मैं हर**

रोज़ पिता जी को लिखता, जो हरद्वार में तपस्या करने के बाद, अमृतसर में, अपने एक पुराने दोस्त या वाकिफ़, शेख़ गुलाम रसूल के पास 25 रुपये मासिक वेतन पर नौकर हो गए थे। मैं उन्हें लिखता कि वे हमें पौनी से अपने पास अमृतसर बुला लें।

शेख़ साहब का वहां कालीन बनाने का कारखाना था, लेकिन उन्होंने साथ ही विलायत से बजाजी मंगवाने और व्यापारियों को बेचने और रुपये उधार देने-लेने का धन्धा भी शुरू कर रखा था। पिता जी को शेख़ साहब ने विलायती बजाजी और उधार का हिसाब-किताब रखने का काम सौंपा। एक दुकान के ऊपर दो कमरे, शेख साहब ने किराए पर ले लिए थे। पिता जी दुकान पर ही रहने लगे। रोटी पकाने के लिए शेख का एक नौकर था। लेकिन पिताजी नौकर को रोटी नहीं देते थे, क्योंकि उनका (अपना) गुज़ारा ही मुश्किल से होता था।

नौकर रोटी पकाता हुआ, फुलके खा लेता था। मैंने उसको एक बार देख लिया।

सन् 1903 ई. (1960 वि.) में मैं (वहाँ अमृतसर में) पढ़ता था। अमृतसर में हमें पता चला कि जम्मू के तमाम लड़कों को, वहाँ इम्तेहान के बगैर ही सालाना तरक्की दे दी गई है। यह पता लगते ही हम भी जम्मू आ गए और मैं दसवीं में दाखिल हो गया। (जम्मू में) हम अपने ताया साधुराम मींगी जी के मकान में ही रहते थे। मेरे भाई साहब रामदास सन् 1902 ई. की सर्दियों में श्रीनगर में तब्दील हो गए थे। मैं दसवीं की परीक्षा की तैयारी में, रात को एक-दो बजे तक, लालटैन की रोशनी में पढ़ता रहता था। मैंने दसवीं का इम्तहान दिया, उधर भाई साहब भी श्रीनगर से फिर

जम्मू (में) आ गए। इम्तहान का नतीजा निकला तो मैं पास हो गया।

पिता जी ने (अमृतसर से) मुझे लिखा कि आगे पढ़ने के लिए मैं अमृतसर आ जाऊँ। घर में तंगी थी, इसलिए भाई साहब चाहते थे कि मैं आगे पढ़ने का ख़्याल छोड़ दूँ और कहीं नौकरी कर लूँ। लेकिन पिता जी नहीं माने। उनके ज़ोर देने पर मैं अमृतसर चला आया और वहाँ मिशन कालेज में दाख़िल हो गया। मेरा (16) सोलह रुपये मासिक का वज़ीफ़ा लग गया।

मैं गर्मियों की छुट्टियों में जम्मू आ जाता। उस वक्त मेरे भाई भगवानदास की शादी हो चुकी थी। बड़े भाई साहब की (दूसरी) शादी तो पहले ही हो चुकी थी। (इसलिए) मैं अपनी माता जी के पास सोता था। मेरे दोनों विवाहित भाई कोठे (छत्त) पर सोते थे। मेरे दिल व दिमाग पर बुरा असर पड़ने लगा। मैं अमृतसर चला गया और एफ. ए. के इम्तेहान की त्यारी करने लगा। एफ. ए. के इम्तेहान में भी मैं पास हो गया। इस इम्तेहान में मैं अमृतसर ज़िले में सोयम (तीसरे नम्बर पर) रहा।

मैंने फिर वजीफे के लिए कोशिश की। अमृतसर के इंस्पैक्टर ऑफ स्कूल्ज़ के दफ्तर भी गया। लेकिन चूंकि मैं जम्मू का बाशिन्दा था, इसलिये उन्होंने मुझे वज़ीफा नहीं दिया। लेकिन जम्मू से मुझे सोलह (16) रुपए वज़ीफा मिल गया।

जब मैं खालसा कालेज में 13वीं जमात में दाखिल होने के लिए वहां गया तो मुझसे पूछा गया क़ि मैं जिन्दगी में क्या काम करना चाहता हूँ ? मैंने जबाव दिया कि मैं मास्टर (अध्यापक) बनना चाहता हूं। मुझे यह पेशा इसलिए पसन्द था, क्योंकि इसमें हर

साल दो महीने की छुट्टियां होती हैं, दूसरे स्कूल के वक्त के बाद फुर्सत ही फुर्सत और रिटायर होने पर पैन्शन मिलती है। और आदमी बच्चों को पढ़ाकर भी कुछ रुपया कमा सकता है। बी. ए. में मैंने अंग्रेजी, हिसाब (ए कोर्स) और फिलासफी ये तीन विषय लिए। कालेज शहर से तीन मील दूर था। मैं सुबह कुछ साथियों के साथ टांगे पर चला जाता लेकिन कालेज से वापिस मैं पैदल ही आता। शाम को हर रोज डेढ़ पाव दूध पीता था। उस पर मेरे रोज पांच पैसे खर्च होते थे। क्योंकि हम गरीब थे। थर्ड इयर की पढ़ाई करते हुए मैं छुट्टियों में, जम्मू अपने घर आया तो उधर शेख साहब. ने विलायती कपड़े का धन्धा बन्द कर दिया। और उस काम के लिए जो दुकान किराए पर ले रखी थी वह भी छोड़ दी। इसलिए पिताजी को तीन रुपया महीना किराए पर मकान लेना पड़ा। नौकर भी नहीं रहा। गर्मियों में सुबह पिताजी रोटी बना लेते। शाम को हम बाज़ार से पूड़ी ले आते। और सर्दियों में सुबह मैं भी रोटी बनाने में मदद करता। शाम को बाज़ार से पूरी लाकर खा लेते। इस तरह हम दिन काटते रहे। मैंने एक साहूकार के लड़के को अंग्रेजी पढ़ाने की ट्यूशन कर ली। पांच रुपये महीने पर। दिन के ढाई आने। मैं रोज़ अपनी ट्यूशन के पैसों का हिसाब करता रहता। मुझे खुशी थी कि हमारी आमदनी पांच रुपए मासिक बढ़ गई है। लेकिन एक महीने के बाद लड़के ने पढ़ना बन्द कर दिया।

जब मैं मिशन कालेज में बारहवीं में पढ़ता था, उन्हीं दिनों मेरे छोटे भाई, भगवान दास और शिवदास भी अमृतसर आ गए थे। वे वहां "बैजनाथ हाईस्कूल" में दाखिल हो गए। भगवानदास ने उस स्कूल से आठवीं पास की और इसके बाद वह जम्मू चले आए।

एक बात और। वहां अमृतसर में एक ऐसा आदमी था जो भगवानदास को जम्मू में, दो साल तक तीस रुपए महीना भेजता रहा। जिस से लाला भगवानदास अमरीना ज़िन्दगी बसर करता रहा। यह रुपया वह आदमी मनी-आर्डर के जरीए, जुलाहका मुहल्ला के एक रामधन महाजन की मार्फत भेजता था। मां भी कहती थी कि किसी से उधार लेकर भगवानदास को पढ़ा रही हूँ। हमारी माता, (इस बात पर) इस लिए पर्दा डालती थी क्योंकि भगवानदास उसको रोज बर्फी लाकर देता था। पिता जी ने एक बार दुःखी होकर मेरे साथ इस बात का ज़िक्र, शोक-भरे शब्दों में किया। इससे यह नतीजा निकलता है कि गरीबी इन्सान को पाप करने के लिए लाचार कर देती है।"

श्री ईश्वरदास मींगी के इस संस्मरण के शुरू में ही इस तथ्य की ओर ईशारा किया गया है कि उनके पिता ला. जगतराम, जो कुछ समय के लिए हरिद्वार चले गए थे, वहाँ से लौट आए क्योंकि उन्हें अमृतसर में पच्चीस रुपये(25 रु.) मासिक की, एक कारखाना-दार व्यापारी के पास, नौकरी मिल गई थी। ला. जगतराम मींगी के कन्धों पर अपने परिवार और बच्चों के भरण-पोषण की और बच्चों को शिक्षा दिलाने की एक बड़ी जिम्मेदारी थी। हमने देखा कि ला. जगतराम ने पहले रावलपिंडी में एक व्यक्तिगत बैंक के मैनेजर के रूप में कार्य किया था। जिस काम में उन्हें वेतन के साथ अच्छी सुविधाएं भी प्राप्त थीं। फिर दो वर्ष का समय बेकारी में बीता, और फिर रावलपिंडी में ही एक सौ रुपया मासिक वेतन पर एक प्राईवेट काम मिल गया। लगभग तीन वर्ष के बाद यह काम भी छूट गया तो ला. जगतराम निराश होकर, ईश्वरदास मींगी के शब्दों में, **"तपस्या करने"** हरिद्वार के तीर्थ में गंगा-तट पर चले गए। ला. जगतराम व्यापारिक धन्धों के अनुभवी जानकार आदमी थे, लेकिन जैसे-

जैसे उनका. अपने काम का यह अनुभव बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनका मासिक वेतन कम से कमतर होता गया। नतीजा यह हुआ कि अब उन्हें मजबूर होकर पच्चीस रुपए महीने की यह नौकरी स्वीकार करनी पड़ी थी। इसे हम परिस्थितियों के आगे उनकी योग्यता और अनुभव की पराजय कह सकते हैं, लेकिन दाद देने के काबिल है **उस आदमी का पुरुषार्थ**, जिसके लिए महत्वपूर्ण थी उसकी, अपने परिवार के प्रति कर्त्तव्य-भावना। परिस्थितियों को अनुकूल न देख कर भी ला. जगतराम ने अमृतसर में यह छोटी सी नौकरी स्वीकार करके वहीं अपनी रिहायश का प्रबन्ध कर लिया था। इसी का फल था कि उनके लड़कों की शिक्षा का क्रम टूटा नहीं, विशेष रूप से उनके नं. दो बेटे, ईश्वरदास मींगी की शिक्षा का। असाधारण गरीबी से जूझते हुए भी ला. जगतराम ने अपने बच्चों की शिक्षा में कोई व्यवधान नहीं आने दिया। और कहावत है कि जो पुरुषार्थी मनुष्य, जीवन की विपरीत परिस्थितियों से भी हार नहीं मानते, संसार की नियामक शक्ति भी उनकी मदद करती है।* बालक ईश्वरदास, **"जम्मू हाई-स्कूल"**से मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद, कालेज में तालीम हासिल करने के लिए अमृतसर में आ गए तो जम्मू-प्रशासन की ओर से उन्हें **सोल ह रुपये** मासिक का वज़ीफा मिल गया था। ईश्वरदास विद्यार्थी जीवन में ही कुछ ट्यूशन (Tuition) भी कर लेते थे, उससे भी कुछ पैसे मिल जाते थे। घर का ख़र्च चलाने में इससे काफी मदद हो जाती थी।

युवक ईश्वरदास मींगी को **ख़ालसा कालेज, अमृतसर** में बी. ए. (प्रथम वर्ष) का दाखिला लेने के लिए जाना पड़ा तो वहां उनसे पूछा गया कि -"पढ़ कर तुम जीवन में क्या काम करना चाहते हो"? तो ईश्वरदास ने कहा कि मैं मास्टर बनना चाहता हूं। क्योंकि एक तो इस काम में अध्यापकों को

* God helps these. who help them-selves.

प्रतविर्ष में दो महीने की छुट्टी मिल जाती है। दूसरे स्कूल में काम समाप्त करके आदमी फुर्सत में बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर कुछ रुपया भी कमा सकता है। तीसरे रिटायर होने पर, गुज़ारे लायक पैन्शन भी मिल जाती है।

मेरे भाइयों और बहन का विवाह

ईश्वरदास ने अपने एक संस्मरण में लिखा है:

"अब 1905 ई. का नवम्बर का महीना था (कत्तक 1962 वि.)। मेरी (दूसरी) शादी चौधरी दुनीचन्द साटी की लड़की से हुई। हम गरीब थे। मैंने एक शख्स बनाम लाडलीं प्रशाद से, जोकि भाई रामदास का व मेरा सांझा दोस्त था, 100) एक सौ रुपया उधार मंगवाया, जिसकी अदायगी में बहुत मुश्कल हुई। उन दिनों से कुछ समय पहले जोधू भतेर का कच्चा मकान भाई साहब ने खरीदा था। इस (सौदे) के लिए दीवान बृजलाल कोहली से 115) एक सौ पन्द्रह रुपए भाई साहब ने उधार लिए थे, जिस की अदायगी भी मुश्कल से होती थी। जब अमृतसर से मुझे जम्मू आना होता तो दीवान साहब, (भाई) शिवदास के ससुर, हमें वहां से बीस-तीस रुपये की बजाजी साथ लेते आने के लिए लिख भेजते। गरीबी थी, बचत नहीं थी, लेकिन रिश्तेदारी का मामला था। जूं-तूं करके उनके लिए बजाजी खरीद कर ले आते। इस तरह, धीरे-धीरे, उनका कर्ज भी अदा कर दिया।

मेरी पत्नी गरीब तबीयत की थी। कभी भी रुपए-पैसे या कपड़े बगैरा के लिए मुझे नहीं कहती थी। मेरे पास भी कुछ नहीं था जो उसे देता। कभी गर्मियों में नये कपड़े बनाने की जरूरत होती तो 1) एक रुपये की मलमल से उसका कुर्ता और चादर

अपने छोटे संसार में बैठे लाला ईश्वरदास



(बैठे हुए) लाला ईश्वर दास मैंगी, श्रीमती प्रभ देवी (पत्नी लाल ईश्वर दास मैंगी), बाएं-उर्मिला कुमार (पोती), पप्पू (सुपुत्र वेद प्रकाश आनन्द), दाएं-विनोद कुमारी (पोती), खड़े-(बाएं से दाएं) अरविन्द कुमार (पोता), डॉ॰ ओम प्रकाश (सुपुत्र) श्रीमती सुशीला देवी (पुत्रवधू), स्वर्गीय विक्रमादित्य (पौत्र)

बन जाती और एक रुपये की मलमल से वह अपना पाजामा (सुत्थन) बना लेती थी। वह इन तीन कपड़ों को पहन कर खुश हो जाती। वह मेरी माता की बहुत सेवा करती थी।

यह मैं लिखना भूल गया कि जब मैं आठवीं में (पढ़ता) था तो मेरी बहन रामदेई की शादी (पिता जी ने) जम्मू आकर की थी। शिवदास की शादी, शायद उस वक्त हुई जब मैं नौंवी या दसवीं में था।

इन्हीं शादियों के लिए पिता जी ने जम्मू से और पौनी से कर्ज लिया था। कभी-कभी कर्ज़ देने वाले (लोग) रुपया मांगने आते तो पिता जी कर्ज़ की अदायगी की ताकत न होने से चुप रहते। इससे मेरे दिल पर बहुत असर होता था, लेकिन मैं भी बेबस था।

अमृतसर की एक बात और याद है कि जब मैं खालसा कालेज में पढ़ता था तो सिक्ख लीडर, मास्टर तारा सिंह भी मेरा जमाती था। वह उस वक्त भी धार्मिक कामों में बहुत हिस्सा लेता था। बहुत थोड़ा पढ़ता था फिर भी जमायत में अच्छे नम्बर लेकर पास होता। हिसाब में उसके नम्बर, मुझसे हमेशा अधिक होते। मुझे खिआल आया कि यत्न करके इम्तेहान में तारा सिंह से अधिक अंक लेने चाहिए। इस लिए मैंने मन लगा कर तैयारी की फल यह हुआ कि मैं बी. ए. की फाइनल परीक्षा में अंग्रेजी और कुल टोटल नम्बरों (ऐग्रीगेट) में अव्वल रहा और मुझे खालसा कालेज से सोने के दो तमगे प्राप्त हुए।"

बन जाती और एक रुपये की मलमल से वह अपना पाजामा (सुत्थन) बना लेती थी। वह इन तीन कपड़ों को पहन कर खुश हो जाती। वह मेरी माता की बहुत सेवा करती थी।

यह मैं लिखना भूल गया कि जब मैं आठवीं में (पढ़ता) था तो मेरी बहन रामदेई की शादी (पिता जी ने) जम्मू आकर की थी। शिवदास की शादी, शायद उस वक्त हुई जब मैं नौंवी या दसवीं में था।

इन्हीं शादियों के लिए पिता जी ने जम्मू से और पौनी से कर्ज लिया था। कभी--कभी कर्ज़ देने वाले (लोग) रुपया मांगने आते तो पिता जी कर्ज़ की अदायगी की ताकत न होने से चुप रहते। इससे मेरे दिल पर बहुत असर होता था, लेकिन मैं भी बेबस था।

अमृतसर की एक बात और याद है कि जब मैं खालसा कालेज में पढ़ता था तो सिक्ख लीडर, मास्टर तारा सिंह भी मेरा जमाती था। वह उस वक्त भी धार्मिक कामों में बहुत हिस्सा लेता था। बहुत थोड़ा पढ़ता था फिर भी जमायत में अच्छे नम्बर लेकर पास होता। हिसाब में उसके नम्बर, मुझसे हमेशा अधिक होते। मुझे खिआल आया कि यत्न करके इम्तेहान में तारा सिंह से अधिक अंक लेने चाहिए। इस लिए मैंने मन लगा कर तैयारी की फल यह हुआ कि मैं बी. ए. की फाइनल परीक्षा में अंग्रेजी और कुल टोटल नम्बरों (ऐग्रीगेट) में अव्वल रहा और मुझे खालसा कालेज से सोने के दो तमगे प्राप्त हुए।"

अध्याय - (चार)

जीवन-यात्रा में, दूसरे पड़ाव का सफर

लाला ईश्वरदास मींगी के **विद्यार्थी-जीवन** की यात्रा के टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर चलते हुए अनुभव की गई कठिनाईयों की जानकारी हमने पिछले अध्याय में देने का यत्न किया है। इस जानकारी का एक-मात्र स्रोत थे, उनके अपने हाथ के लिखे उनके **संक्षिप्त संस्मरण।**

उनके विद्यार्थी-जीवन का यह सफरनामा रोचक तो है. ही, साथ ही उसमें, आज से सौ साल पुराने जम्मू की एक हल्की सी झलक भी अंकित मिलती है। इस सफरनामे को लाला ईश्वरदास ने **'एक संघर्षशील, गरीब घराने की कहानी'** बना कर ही अपने संस्मरणों में अंकित किया है। यदि उनके इन संस्मरणों में, अपने सीमित घराने की सीमा-रेखा के बाहिर आ कर, जम्मू के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की भी कुछ जानकारी दी गई होती तो उनके इन संस्मरणों का महत्व बढ़ जाता। खैर, हम श्री ई० दास मींगी के आभारी हैं कि उन्होंने अपने जीवन की मामूली ही सही कुछ जानकारी तो इन संस्मरणों के माध्यम से हमें दी है। उनके इन संस्मरणों के आधार के बिना उनके जीवन के सम्बन्ध में यह संक्षिप्त सा मोनोग्रॉफ (Monograph) लिखना भी दुष्कर हो जाता।

लेकिन हमारे मन में यह जिज्ञासा तो स्वाभाविक ढंग से उपजती है कि जिस तरह लाला जी ने **अपने** विद्यार्थी जीवन के बारे में हमें बतलाया है, वैसे ही उन्होंने हमें अपने दो छोटे भाइयों, भगवानदास और शिवदास के विषय में भी कुछ जानकारी क्यों नहीं दी ? उन्होंने हमें इन दोनों की लड़कपन में हुई शादियों की सूचना दी । इस सम्बन्ध में लिए गए कर्ज़ों की अदायगी में पेश आने वाली कठिनाई के संकेत दिए, लेकिन इन दोनों भाइयों का अधिकतर

विद्यार्थी-जीवन अपने पिता ला. जगतराम मींगी के साथ क्यों नहीं गुज़रा ? वे जम्मू में कहां रहते थे? किसके पास रहते थे ? ईश्वरदास जी का छोटा भाई **भगवानदास जब** अमृतसर से सपत्नीक जम्मू चला आया था तो अमृतसर से **वह कौन आदमी** था जो उसे, जुलाहके मुहल्ले के किसी महाजन की मार्फत **तीस रुपये** प्रतिमाह, दो साल तक भेजता रहा था ? वह भगवानदास को यह असाधारण रकम क्यों भेजता था, जिन रुपयों की बदौलत भगवानदास का जीवन **अमीराना** ढंग से बीतने लगा था ? ईश्वरदास जी के कहने के मुताबिक, उनकी माता भी इस मनी-आर्डर वाली बात को पर्देदारी में रखने का यत्न करते हुए, झूठ कहती रही कि ये रुपये वह कहीं से उधार लेकर भगवानदास की पढ़ाई पर खर्च कर रही है। उस वक्त शिवदास जी कहां थे? क्या वे जम्मू में अपनी माता और भाई के साथ नहीं रहते थे ? क्या वे उस समय यह जानने के योग्य नहीं थे कि अमृतसर में उनके पिता उस समय सिर्फ पच्चीस रुपये माहवार वेतन पर किसी व्यक्ति की नौकरी कर रहे हैं, और वे इस स्थिति में नहीं हैं कि जम्मू में अपने परिवार के गुज़ारे के लिए, उचित रकम़ भेज सकें, तो फिर भगवानदास का यह अमीराना पहनना-खाना कैसे चलता है?

जगतराम मींगी भी इस मनी-आर्डर की बात को जानते थे। इन्होंने बड़ी लाचारी के लहजे में इस बात का ज़िक्र ईश्वरदास मींगी से भी किया था। सारे मींगी परिवार को लज्जित करते हुए, अमृतसर का यह कौन रहस्यमय व्यक्ति था जो भगवानदास पर इतना दयालु हो गया था? और क्यों? ला. ईश्वरदास ने इस बात की चर्चा छेड़ी जरूर, लेकिन इस बात को बहुत कुछ **पर्दे में** ही रहने दिया। और जिस समय हम यह 'मोनोग्राफ' लिखने लगे हैं तो जीवन के इस रंग मंच पर से ला. जगतराम और उनके सभी बेटे भी गायब हो चुके हैं। .

लाला ईश्वरदास के इन संस्मरणों से यह आभास ज़रूर मिलता है कि मींगी भाइयों के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण नहीं थे। मुझे उनके लिखे हुए (Notes)

में से कुछ एसे संकेत मिले हैं जिनसे मेरी यह आशंका दृढ़ होती है। जैसे:

नं. (1) कापी नं. (2) के सफा 38 पर लाला जी ने एक वंश-वृक्ष बनाया है जो इस तरह है :-

Approximate date of birth

	नाम	(विक्रमी)	(अंग्रेजी)
1.	इन्द्र	1759 वि.	1703 AD
2.	भोलानाथ	1789 वि.	1733 ई.
3.	देवीसहाय	1819 वि.	1763 ई.
4.	नरिंजन	1849 वि.	1783 ई.
5.	दूलोराम	1879 वि.	1823 ई.
6.	जगतराम	1909 वि.	1853 ई.
7.	ईश्वरदास	14.8.1943 वि.	1857 ई.
8.	ओम प्रकाश	11.10.1974 वि.	1917 ई.
9.	गौतम	24.2.2004 वि.	1947 ई.

नं. (2) लाला इश्वरदास, कापी नं. (1) में 22 नं के पन्ने पर अपने एक संस्मरण में लिखते हैं:

"लाला भगवानदास एफ.ए. में दो बार फेल हुए, बी.ए. में एक बार। लेकिन किस्मत की बात देखो-भगवानदास जी 350) तीन सौ पचास रुपए पैंशन पाते हैं, और मैं जो कभी फेल नहीं हुआ, 148) एक सौ अठतालीस रुपये पैंशन पाता हूँ। शिवदास शायद एक बार एफ. ए. में और एक बार बी. ए. में फेल हुए। उनकी पैंशन करीबन 185) एक सौ पचासी रुपये है।"

नं. (3) कापी नं. 2 के सफा नं. 32 पर लाला जी ने 22. 4. 62 AD

को लिखा:

" About two months after his father's death. Mr. Avtar Krishan told me that he had been advised by his father, in his written instruction to befriend me."

अर्थात्- लगभग दो महीने हुए, पिता (भगवानदास मींगी) के इन्तकाल हो जाने के बाद, (भगवानदास के बेटे) अवतार कृष्ण ने मुझे बतलाया कि उसके (स्व.) पिता ने उन्हें लिखकर हिदायत दी थी कि मैं आपसे अर्थात् ईश्वरदास मींगी से अपने सम्बंन्ध सुधार लूं।

लाला जी के ये तीनों 'नोट' मींगी भाइयों में मनमुटाव होने का संकेत देते हैं। भाइयों में इस तरह के मनमुटाव होने के कारण क्या थे, इस बात की जानकारी लाला जी की लिखी इन दो कापियों में नहीं मिलती। लेकिन ला. जगतराम मींगी के परिवार का यह बिखराव एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है। ईश्वरदास जी के दोनों छोटे भाई भी, जम्मू की प्रशासनिक व्यवस्था में, अच्छे पदों पर पहुंचे थे। लाला भगवानदास 'ऐक्साइज' विभाग में ऊंचे पद पर पहुँचकर रिटायर हुए थे और शिवदास महकमा जंगलात में डी. एफ. ओ. के पद पर पहुँचकर सेवा-निवृत्त हुए थे।

लाला जगतराम मींगी ने बड़ा परिश्रम करके अपने इस परिवार का भरण-पोषण किया था और बच्चों को अच्छी तालीम दिला कर इस योग्य बनाया था कि वे समाज में सम्मानपूर्वक जीवन बिता सकें। लेकिन ईश्वरदास जी ने अपने संस्मरणों में, उनके जीवन के आखिरी वर्षों का कुछ भी ब्योरा देने की आवश्यकता नहीं समझी। उनके जिन दो भाइयों ने रावलपिंडी वाले सांझी बैंक से सात हजार रुपये उधार लिए थे, और जिनके साथ उनका लम्बे अर्से तक दीवानी मुकद्दमा चलता रहा था, उनकी भी निशानदेही नहीं हुई। लेकिन इन कोताहियों और कमियों के रहते भी हमारे इस मोनोग्राफ (Monograph) के

कथा-नायक की जीवन-गाथा के दूसरे पड़ाव की सफल यात्रा का कुछ विवरण अभी आपको सुनाना है।

लाला ईश्वरदास ने लिखा है कि:-

"बी. ए. पास करने के बाद मैंने अपनी माता से कहा कि मुझे "एल. एल. बी." (LL.B) करने का शौक है। अगर कुछ रुपया हो तो पढ़ सकता हूँ। उन्होंने कहा, मेरे पास तो रुपया है नहीं"। इसलिए मैं आगे नहीं पढ़ सका।

मेरे मन में ख्याल आया कि महाराजा प्रताप सिंह जी के दरबार में हाज़र होवूं। लाला नानकचन्द खोसला का पिता महाराजा के पास पेशी का मुन्शी था। उनसे भाई रामदास की वाकफ़ी थी। भाई साहब ने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि फलां दिन, फलां समय, फलां जगह पर भेज देना, 'जै देवा' करवा दूंगा। मैं उस दिन वहां चला गया। उन्होंने मुझ से एक अर्ज़ी लिखने को कहा कि मुझे कोई मुनासिब नौकरी दी जावे।

मैं महाराजा के दरबार में हाज़र हुआ। महाराजा ने मुझे देखा और जब मैंने कहा कि मैंने (बी.ए.) पास कर लिया है तो वे हैरान हुए। क्योंकि मेरे मुँह में अभी तक दाढ़ी का एक बाल भी नहीं उगा था। उन्होंने मुझे दो-तीन बार पूछा कि क्या सचमुच मैंने (बी.ए.) पास कर लिया है? मैंने जवाब में, "जी हां" कहा। महाराजा ने वज़ीरे आज़म, दीवान अमरनाथ को कहा कि इसे काम सीखने के लिए कहीं बाहिर भेज दें।

मैंने कह दिया, जनाब मैं अब बाहिर नहीं जाऊंगा। मेरी सेहत खराब है। उन्होंने फिर पूछा, फिर क्या चाहते हो? मैंने कहा विलायत पढ़ने के लिए वज़ीफ़ा दिला दें। कहने लगे, इधर तो बाहिर काम सीखने

जाना नहीं चाहते हो कि सेहत ख़राब है, तो विलायत में कैसे जाओगे? मैंने कहा, "सरकार, वहां जाने में कुछ समय तो लगेगा, उस समय तक सेहत कुछ ठीक हो जाएगी। महाराजा ने दीवान जी से पूछा कि विलायत जाने से क्या लाभ होगा? दीवान साहब ने कहा, वहाँ ज्यादा आला तालीम हासिल कर सकता है। महाराजा ने हुकम दिया कि 'पहली खाली आसामी इसको दी जाए'। मैं वापिस घर आ गया। मुझे उन्ही दिनों गवर्नमैंट हाईस्कूल मीरपुर में मास्टर की नौकरी मिल गई। इसमें भाई साहब रामदास की वाकफीयत काम आई थी। वहां मुझे 60) साठ रुपये माहवार वेतन मिलता था। लगभग 30) तीस रुपये ट्यूशन करके कमा लेता था। मैं 55) पचपन रुपये मासिक घर भेज देता था।

यहां नौकरी करते लगभग दो महीने ही हुए थे कि जम्मू गवर्नरी के दफ्तर से एक चिठ्ठी आई कि अगर मैं चाहूँ तो बिना-तनख्वाह बतौर उम्मीदवार मुझे वहां रखा जा सकता है। मैंने जवाब लिख भेजा कि मैं बगैर तनख्वाह काम नहीं कर सकता। (अब मैं सोचता हूँ कि) महाराजा के कहने पर अगर मैं काम सीखने के लिए स्टेट से बाहिर जाने के लिए राजी हो जाता तो शायद मंत्री, नायब मंत्री या (Secretary) होकर रिटायर होता। लेकिन ऐसा नहीं होना था, (क्योंकि) मुझे तो मास्टर ही बनना था।

सन् 1907 अप्रैल से 1908 अप्रैल तक मैं मीरपुर में रहा। फिर मुझे अपनी पूरी तनख़्वाह पर ट्रेनिंग करने के लिए लाहौर भेज दिया गया। तीन महीने तक साठ रुपये महीना मिलता रहा फिर 85)रुपये महीना मिलने लगा। मैं इस में से 25) पच्चीस रुपए अपने खर्च के लिए रखता, 25) पच्चीस रुपए अपने भाई भगवानदास को भेजता

जो उस समय लाहौर के डी.ए.वी. कालेज में पढ़ रहा था। 25) पच्चीस रुपए जम्मू में अपने घर के खर्च के लिए भेज देता और बाकी दस रुपए पिताजी का उठाया हुआ कर्ज़ अदा करता।

मैं मीरपुर (स्कूल) में एक साल-भर ही रहा। वहाँ के लोगों का मेरे साथ बहुत अच्छा सलूक था। जब मैं सवेरे बाज़ार में से गुज़रता तो बहुत से दुकानदार मुझे राम-राम कहते। मैंने किसी से मांग कर चारपाई ली थी। साल भर तक मुझे उसने लौटाने को नहीं कहा। वहाँ के वकीलों के दो मुन्शी मुझ से अंग्रेज़ी पढ़ने आते थे। वे मुझे 7-7 रुपए महीना देते थे। एक वकील का लड़का भी मुझसे पढ़ता था। वकील ने मुझे घर में रहने के लिए कमरा भी दिया और दोनों वक्त का खाना भी मैं उन्हीं के खाता। वकील मुझे सात रुपए महीना भी देता था। मैं खुश था कि जम्मू में मेरे घर का खर्च चलाने में मेरी वजह से बहुत सुहूलत पैदा हो गई थी।

लाहौर में मैं S.A.V. ट्रेनिंग क्लास में दाखिल हो गया। वहाँ बोर्डिंग में रहता था। वहाँ मैं किचन का मैनेजर बना दिया गया। होस्टल का सुपरिन्टैंडैंट दूसरे लड़कों को मेरी तरह व्यवहार करने के लिए कहता था। S.A.V. क्लास में पढ़ते हुए मुझे टेनिस खेलने का शौक हुआ। चुनांचे लाहौर में B.T. की ट्रेनिंग करते हुए मैं टेनिस टीम का कप्तान रहा। मैच खेलने पर हर एक खिलाड़ी को दो-तीन रुपए का फल खाने को मिल जाता था। फल खा कर बहुत खुशी होती। S.A.V. क्लास में पढ़ाई के दौरान हम ने शेक्सपीयर का ड्रामा "As you like It." खेला। मैंने उसमें एक लेडी का पार्ट किया। प्रिंसीपल मुझ पर इतना खुश था कि वह मेरे बाज़ू में बाज़ू डाल कर कालेज के वरांडे में फिरा करता था।

जब S.A.V. का सालाना इम्तेहान हुआ तो एक पर्चे में एक लाज़मी सवाल मैं तसल्लिबख्श तरीके से नहीं लिख सका था। मुझे बड़ा फिक्र लगा रहा कि यदि मैं इस पर्चे में फेल हो गया तो महकमा तालीम मुझ पर नाराज़ होगा। ख़ास तौर पर मिस्टर दादीना जो उस वक्त स्कूलों का भी बड़ा अधिकारी था, और जिसने इस ट्रेनिंग के दौरान मुझे साठ रुपए और पचासी रुपये मासिक देने का विरोध किया था। लेकिन मेरी किस्मत अच्छी थी। नतीजा निकला तो मैं अंग्रजी के पर्चे में और टोटल एग्रीगेट में अव्वल आया। मुझे सोने का मैडल और बीस रुपए की किताबें ईनाम में मिलीं।

ला. ईश्वरदास मींगी के लिखे हुए संस्मरणों के आधार पर उनकी जीवन-गाथा के लाहौर में S.A.V. ट्रेनिंग के ब्योरे तक ही स्रोत-सामग्री हमें मिल सकी है। इसलिए उनके अध्यापक के रूप में किए गए काम-काज के बारे में हमें, उनके अपने हाथ से, अंग्रेजी भाषा में लिखे हुए दो-सफे के Bio-Data से कुछ जानकारी मिली है। यह Bio-data उन्होंने 10 जनवरी 1970 ई. के दिन, जम्मू के पहले पत्रकार, स्व. मुल्कराज सराफ को उनके श्रीनगर के पते पर भेजा था। श्री मुल्कराज सराफ ने उन्हें लिखा था कि:-

"You will be glad to know that I have planned to bring out a J&K Year Book and who is who, 1970. You undoubtedly hold a high position of your own. I am to request you , therefore to kindly let me have the requisite information as soon as possible."

Dated 29.11.1969 AD

Yours Sincerely
SD. Mulkraj Saraf
Chief Editor.

इसके उत्तर में उन्होंने 10 जनवरी, 1970 को अपना जो जीवन-वृत्त

(Bio-data) श्री मुल्कराज सराफ को भेजा था. उसकी एक कापी अपने पास रख ली थी। श्री ओमप्रकाश मींगी ने ईश्वरदास मींगी के जो कागज़ वगैरा मुझे दिए थे, उनमें उनके Bio-data की यह कापी भी थी। इस में उन्होंने लिखा था-

> "As Head Master of High Schools I had worked at Mirpur, Samba, Jammu, Akhnoor, Srinagar, Udhampur, and Bhadarwah."

और स्कूलों के इंस्पेक्टर के पद पर रहते हुए श्री मींगी ने, स्कूलों का निरीक्षण करने के लिए ऊधमपुर तथा कठुआ जिलों के अनेकों स्थानों के दौरे लगाए थे।

इन सभी जगहों में जो लोग किसी भी हैसियत से उनके संम्पर्क में आए थे उन सबने ईश्वरदास मींगी के सौम्य व्यक्तित्व और अनुशासन-प्रियता की भरपूर प्रशंसा की। श्री मींगी के हैडमास्टर बन कर आने से स्कूल के वातावरण और उसकी गतिविधि में एक अनोखी रंगत आ जाती थी। वे स्वयं अपने अनुशासन के पाबन्द होकर काम करते थे, इसलिए स्कूल के अध्यापक वर्ग में भी कर्त्तव्य-परायण होने की चेतना जागने लगती था। स्कूल के प्राय: सभी विद्यार्थी अपने अध्यापकों से ही अनुशासन की शिक्षा पाते हैं। वे उस अध्यापक का हृदय से सम्मान करते हैं, जो क्लास में ठीक समय पर आते हैं और अपने पाठ्य विषय को दिलचस्पी के साथ और **सुचारु ढंग** से पढ़ाते हैं। क्लास-रूम के ऐसे वातावरण में स्वयं ही एक गम्भीरता तथा आत्मीयता पैदा होने लगती है। क्लास-रूम के बाहिर भी छात्रों के व्यवहार में एक शिष्टता आने लगती है। स्टाफ़-रूम में अध्यापक-वर्ग की बातचीत में भी परिवर्तन होता दिखाई देता है।

ऐसा अनुशासित वातावरण शुरू होता है स्कूल के **मुख्याध्यापक** से। बड़ी भाग्यशाली होती हैं वे शिक्षा-संस्थाएं जिनको व्यवहार में सौम्यता के गुण

वाले तथा अनुशासन के मामले में दृढ़ता का पालन करने वाले मुख्याध्यापकों का नेतृत्व नसीब होता है।

लाला ईश्वरदास मींगी एक ऐसे ही आदर्श मुख्याध्यापक थे। जिस-जिस स्कूल में, इस हैसियत से भेजे गए वहाँ-वहाँ अपनी कीर्ति-गाथा के सुगन्धित फूलों की महक छोड़ आए। इसी लिए किसी भी स्कूल में उनके आने और चले जाने के बाद लोग चिर काल तक उनको सम्मान के साथ याद करते रहें हैं।

लेकिन कुदरत की इस हक़ीकत को, हमें भूल नहीं जाना चाहिए कि अपने कर्त्तव्य का सुचारु रूप से निर्वाह करने के कारण मिलने वाला यश अजर-अमर नहीं होता। उसकी महक आहिस्ता-आहिस्ता कम होती जाती है। हमारी रियासत के हाईस्कूलों की तादाद के मुताबिक ही हैडमास्टरों की भी तादाद रही है। सेवा-निवृत्त होने वालों की जगह दूसरों को इस पद पर काम करने का अवसर मिला है। लेकिन लोगों के ज़हन में जिनकी स्मृति कुछ **दशकों** तक बनी रही है उनकी संख्या बहुत कम है। श्री रणबीर हाईस्कूल जम्मू में ही काम करने वाले हैडमास्टरों की संख्या कम नही है, लेकिन उसी स्कूल में काम करने वाले कर्मचारियों तथा अध्यापको ने उनमें से अधिकतर के नाम तक भीं नहीं सुने होंगे। लाला ईश्वरदास मींगी उन चन्द भाग्यशाली हैडमास्टरों में से थे जिनको रिटायरमैंट के इतने दशकों के बाद भी आज तक कुछ लोग अब भी याद करते हैं।

लाला ईश्वरदास मींगी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में हम यहां जम्मू के कुछ मान्य व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करना चाहते हैं, जो लाला जी को जानते थे, किसी न किसी रूप में उनके सम्पर्क में आए थे।

1. सब से पहली प्रतिक्रिया के लेखक् हैं जम्मू के प्रतिष्ठित पत्रकार **श्री ओम प्रकाश सराफ**। स्व. लाला मुंल्कराज सराफ के बड़े बेटे। ओम प्रकाश सराफ उस समय रणबीर हाईस्कूल के **विद्यार्थी** थे जब लाला

ईश्वरदास मींगी इस स्कूल के हैडमास्टर थे। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया अंग्रेजी में लिखी है जिसका हिन्दी रूपान्तर मैं यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ।

2. दूसरी प्रतिक्रिया है **श्री गणेशदास शर्मा** की जो हमारी रियास्ती सरकार में Information Secretary थे, और वहां से सेवा-निवृत्त होकर एक दशक से अधिक समय तक ज.क. धर्मार्थ ट्रस्ट के अवैतनिक सकत्तर रहे। श्री गणेशदास ने बी.ए. करने के बाद अपना केरयिर 'एक' **अध्यापक** के रूप में शुरू किया था। श्री रणबीर हाईस्कूल में अध्यापक के रूप में नियुक्त होने, पर स्कूल में श्री मींगी के व्यक्तित्व के प्रभाव की सुगन्ध से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी यह प्रतिक्रिया लिखी है।

3. और तीसरी प्रतिक्रिया है **श्री कैलाशनाथ 'मैकश'** कश्मीरी की, जो उर्दू भाषा के एक सिद्धहस्त शायर हैं। श्री 'मैकश' रेडियो कश्मीर, जम्मू में बहुत अर्से तक कार्य-रत रहने के बाद वहीं से सेवा-निवृत्त हुए, और जम्मू के एक प्रसिद्ध तालीमी अदारे, **मॉडल अकैडमी** में पढ़ाने लगे। वहीं पर लाला ईश्वरदास मींगी भी, प्रिंस ऑव वेल्स कालेज जम्मू की B.T. क्लास के इन्चार्ज प्रोफेसर के पद से सन् 1941 के अन्त में रिटायर होकर, हैडमास्टर के रूप में काम करने लगे थे। वहां ही उनका सम्पर्क हुआ।

4. और चौथी प्रतिक्रिया है वह श्रद्धांजलि जो (B.T.) क्लास के उनके विद्यार्थी-अध्यापकों ने, श्री मींगी के सेवा-निवृत्त होने पर, उन्हें अर्पित की थी।

ये चारों प्रतिक्रियाएं, अंग्रजी भाषा में थीं। यहां उनका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। इनके मूल अंग्रेजी प्रारूप हम पुस्तक के अन्त में एक परिशिष्ट में दे रहे हैं। और इन चार प्रतिक्रियाओं के अन्त में हम पिछले 50-55 वर्ष से वेदमन्दिर में **प्रबन्धक** के रूप में काम करने वाले, पं ठाकुरदत्त शास्त्री की हिन्दी में लिखी प्रतिक्रिया दे रहे हैं।

पांचवां-अध्याय

उनके समकालीन विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के संस्मरण

नं. 1

जम्मू
3.5.1997

माननीय ओम प्रकाश मींगी जी,

मुझे यह जान कर खुशी हुई है कि जम्मू के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में स्व. लाला ईश्वरदास मींगी के योगदान के विषय में, एक मोनोग्राफ (Monograph) लिखा जा रहा है। श्री ईश्वरदास मींगी का सारा जीवन सामाजिक आवश्यकताओं के बारे में विचार करने में तथा असाधारण रूप से सरल जीवन बिताने में बीता है। उनके इस आदर्श जीवन से दूसरों को भी प्रेरणाएं मिल सकती हैं। मुझे सन् 30 के दशक के मध्य में श्री रणबीर हाईस्कूल में पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जब श्री मींगी इस प्रमुख विद्यालय के मुख्याध्यापक थे और जिसका वे अत्यन्त कुशलता-पूर्वक संचालन कर रहे थे। स्कूल के सभी अध्यापक तथा छात्र स्कूल में हमेशा चौकस रहते थे कि हैड मास्टर श्री ईश्वरदास मींगी दौरे पर न जाने कब इधर आ निकलें। इसी का परिणाम था कि स्कूल की पढ़ाई के समय में, वहां अनुशासन की शान्त खामोशी छाई रहती थी। मुझे आज भी याद है कि एक बार उन्होंने मुझे क्लास-रूम से नंगे सिर बाहिर निकलते पकड़ लिया था और मुझे उनकी डांट खानी पड़ी थी। मैंने उन्हें कहा कि यह हमारी ड्रिल की घंटी थी और ड्रिल-मास्टर आज छुट्टी पर थे, और हम अब अपने-अपने घर जाने वाले थे। लेकिन मेरे इस उत्तर से भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उनका यह कहना सही था कि किसी भी स्थिति में विद्यार्थी को स्कूल में, नंगे सिर रहने की इजाज़त नहीं हो

सकती। उस वक्त स्कूल की यही परम्परा थी। उन्होंने मुझे अपना दायां हाथ फैलाने के लिए कहा और मेरी हथेली पर अपने हाथ में पकड़े हुए रूल से एक-दो बार पीट कर सज़ा दी। चाहे मैं अपनी क्लास का मानीटर था। तथा स्कूल में मुझे **मैरिट स्कालरशिप** भी मिलता था। लेकिन नियम का उल्लंघन करने पर, उसका दंड तो मिलना ही था। यह भी सच है कि श्री मींगी के समय के स्कूल में "डंडे के राज" वाली कोई बात नहीं थी। दरअसल उनके कोमल व्यक्तित्व और प्रभावपूर्ण जीवन-शैली से मैं बड़ा प्रभावित था। मैं समझता था कि उनके व्यवहार में शफकत का गुण था और वे स्कूल के विद्यार्थियों के जीवन के एक सर्वांगीन विकास की हमेशा कल्याण-कामना करते थे।

यदि हम में से इने-गिने लोग भी उस महान् आत्मा के पद-चिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित हो जाते तो इस ऐतिहासिक नगर में नेकी और सेवा-सहानुभूति का वातावरण इस प्रकार कलुषित न होता।

3.5.1997

आपका-ओम प्रकाश सराफ,
सराफ भवन
(कूचा सरदार किशन सिंह)
जम्मू।

-0-

नं. 2

शिष्टाचार का मूर्त रूप लाला ईश्वरदास मींगी

यद्यपि मुझे विद्यार्थी के रूप में या अध्यापक के रूप में लाला ईश्वरदास मींगी जी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ लेकिन इसे भी मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूँ कि मुझे जम्मू प्रान्त के इस सबसे पुराने और सबसे मशहूर स्कूल अर्थात् रणबीर हाई स्कूल में अध्यापक के रूप में कुछ वर्ष तक काम करने का सुअवसर मिला है। मेरी नियुक्ति जब इस स्कूल में हुई थी,

उन्हीं दिनों लाला साहब, पदोन्नति हो जाने के कारण, प्रिंस आफ़ वेल्स कालेज जम्मू में, नए-नए खोले गए बी.टी. ट्रेनिंग केन्द्र के इन्चार्ज प्रोफ़ेसर बनकर वहां चले गए थे।

मुख्याध्यापक के रूप में लाला जी के कार्य-काल में, स्कूल के वातावरण में, अनुशासन की जो सुगन्धि भर गई थी, उसे मैंने, वहाँ जाने पर भरपूर महसूस किया था।

स्कूल के जिन अध्यापकों ने लाला साहब के साथ काम किया था वे, उनके अनुशासन के सम्बन्ध में उनके अचानक लगाए जाने वाले दौरों की विशेष चर्चा करते थे, जो लाला साहब कर्त्तव्य-विमुख छात्रों तथा अध्यापकों पर निगरानी रखने के लिए लगाते थे। पढ़ाई के समय में आपको स्कूल में कोई विद्यार्थी इधर-उधर घूमता हुआ नहीं दीखता था तथा अध्यापक अपनी अपनी क्लास में दिलचस्पी से अध्यापन-कार्य करते रहते थे। लाला साहिब की दियानतारी के अनेकों किस्से कहे जाते थे। स्कूलों में वर्षों तक काम करते हुए लाला जी ने सरकारी स्टेशनरी की छोटी-बड़ी किसी चीज का कभी भी व्यक्तिगत उपयोग नहीं किया था। वे सरल और अनुशासित जीवन के आदर्श-पुरुष थे। वे सच्चे अर्थ में कर्म-योगी थे।

संसार में ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो, लाला साहब की तरह, महापुरुषों के दिखाए हुए मार्ग पर चलने की हिम्मत रखते हैं।

-गणेश दत्त शर्मा

12.5.1997 ई.

11/DC गान्धी नगर, जम्मू

नं. 3

जम्मू की एक महान् तथा देदीप्यमान आत्मा से जुड़े कुछ संस्मरण

यद्यपि मेरे लिए यह कोई आसान काम नहीं है कि 54-55 साल पहले

बीत चुके वक्त की यादों को समेट सकूं, फिर भी मैं लाला ईश्वरदास मींगी जी के साथ बिताए हुए वक्त के कुछ संस्मरण, उनके जीवन के उस मोनोग्राफ के लिए जो इस समय लिखा जा रहा है, पेश करने की कोशिश करूंगा। मेरे मन में, लाला जी के लिए, हमेशा एक सम्मान की भावना मौजूद रही है।

यह मेरी खुशनसीबी है कि मैंने लाला जी के मातहत पढ़ाने का काम किया है जब वे, डेनिस गेट के पास स्थित **मॉडल अकैडमी** नाम के तालीमी अदारे में हैडमास्टर की हैसीयत से काम करने के लिए आए थे। श्री (H.L. Gupta) (हरबंसलाल गुप्ता) उस समय उस संस्था के **प्रिंसीपल** थे। लाला साहिब एक सच्चे आदमी थे और दूसरों के साथ व्यवहार में वह हमेशा शालीनता से काम लेते थे। लाला जी सरलता, नम्रता, सचाई, और दयानतदारी के गुणों से भरे पूरे व्यक्ति थे। वे स्वयं समय के बड़े पाबन्द थे और हमें भी समय की पाबन्दी निभाने के लिए कहते थे। वे तालिबे-इल्मों से भी और हम जो उनके अज़ीज़ थे, हमें भी हमेशा समय का मूल्य पहिचानने की तलकीन करते थे। कहते थे समय का हर एक क्षण अमूल्य होता है। व्यर्थ चला चाए तो उसकी भरपाई नहीं हो सकती।

यह उसी माननीय व्यक्ति के उपदेशों का प्रभाव है कि मैंने भी जीवन में कोशिश की है कि हर काम निश्चित समय पर किया जाए। मैंने लाला जी के मुख से कभी कोई कड़वी बात नहीं सुनी। वे एक **आदर्श मदर्रस** थे। अपने जीवन में सत्य के पुजारी होने के कारण, वे स्कूल के बच्चों में झूठ को सहन नहीं करते थे। झूठ बोलने वाले लड़कों को लाला जी सज़ा भी देते थे।

एक बार स्कूलों के डायरेक्टर जनाब श्री A.A. Qazmi हमारे स्कूल में आए और उर्दू कविता के लिए अपनी दिलचस्पी दिखाई तो मैंने उन्हें अपनी लिखी एक उर्दू गज़ल सुनाई। काज़मी साहब से तो मुझे दाद मिली ही, लेकिन लाला ईश्वरदास गज़ल सुनकर रोमांचित हो उठे। गज़ल का एक शेर तो उन्होंने मुझ से कागज़ पर लिखवा कर अपने पास रख लिया था।

वो शेर था -

खुद निकल जाती है काले बादलों को चीर कर,

चांद की कश्ती का कोई नाख़ुदा नहीं होता।

लाला जी को भी अंग्रेज़ कवि Rudyard Kipling की एक अंग्रेजी नज़्म याद थी, जिसकी शुरू की लाइने उन्होंने हमें सुनाई थीं। लाइनें इस तरह थीं

"If you can keep your head, when all about you
Are loosing their and blaming it on you."

मॉडल अकैडमी स्कूल में जब दसवीं के इम्तहान में मेरा Result 98.5% निकला तो ला. ईश्वरदास जी की सिफारिश का मान करते हुए मेरे माहवार वेतन में 25/-रुपये की बढ़त कर दी गई थी। स्कूल के प्रिंसीपल श्री H.L.Gupta अक्सर, स्कूल के मसलों के बारे में लाला जी से ही मशवरा करते थे।

लाला जी जेब में एक छोटा सा चाकू रखते थे। और खाली पीरियड में अक्सर उस चाकू से काट-छील कर सेब या कोई दूसरा फल खाते थे।

एक दिन स्टूडेंट्स को छुट्टी कर दी गई थी और मैं, साईंस मास्टर श्री रामलाल और हिन्दी-संस्कृत पढ़ाने वाले श्री कुन्दन लाल शास्त्री, स्टाफ-रूम में बैठे गप-शप कर रहे थे। अचानक वहां प्रिंसीपल गुप्ता और हैडमास्टर श्री मींगी दोनों आ गए। वे दोनों भी वहां हमारे साथ बैठ गए और कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे। प्रिंसीपल गुप्ता ने हमें अपनी-अपनी मनपसन्द खाने वाली चीज़ के बारे में पूछा। मास्टर रामलाल ने अंडों के 'ऑमलेट' का नाम लिया तो कुन्दन लाल शास्त्री ने 'दूध की खीर' को अपनी पसन्द बतलाया। मैंने कहा, मुझे 'दम-आलू' की भाजी पसन्द है। जब गुप्ता जी ने लाला जी की

ओर देखा तो वह तत्काल बोले 'खिचड़ी', "खिचड़ी-मन मिचड़ी" मेरी पसन्द है। हम सब लाला जी की ओर देखने लगे।

मैंने देखा कि लाला जी को रोज़ाना अख़बार पढ़ने का भी शौक था। वे हमें कहते थे कि News का मतलब है North, East, West और South। वे अख़बारों के महत्व को खूब समझते थे, इसलिए हमें भी समझाते थे।

लाला जी अपने स्टूडेंट्स को, पाठ्यपुस्तकों के इलावा स्वाध्याय (Self-study) करने का भी महत्व समझाते थे। इसके लिए स्कूल की तथा पब्लिक लाईब्रेरियों से लाभ उठाने की तलकीन करते थे। लाला जी अपनी सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं में पक्के हिन्दू थे, लेकिन अपने विशाल देश के सन्दर्भ में पक्के **हिन्दुस्तानी** (Indian) थे। उन्हें अपने भारतीय नागरिक होने पर गर्व था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सिद्धान्त उनके जीवन के लिए भी आदर्श थे। वे सच्चे गांधीवादी थे क्योंकि **अहिंसा, शान्ति, प्यार** और **सत्य**- इन सभी सिद्धान्तों में उन्हें पूर्ण आस्था थी। उन्होंने एक बार बातचीत में मुझे गम्भीरता के साथ बतलाया था कि यद्यपि उनके बेटे डॉ. ओम प्रकाश मींगी ने सियासी जीवन अपना लिया है, लेकिन मुझे सियासत में कोई दिलचस्पी नहीं है। लाला जी के मन में जवाहर लाल नेहरू के प्रति बड़ा मान और श्रद्धा का भाव था और वे अक्सर भारत के लोह-पुरुष सरदार पटेल की भी बड़ी प्रशंसा करते थे।

हमारे मुहल्ला **मस्तगढ** में, जहां श्री ईश्वरदास मींगी भी रहते थे, सभी छोटे-बड़े लोग उनका बड़ा सन्मान करते थे। लाला जी को बच्चों से हार्दिक प्यार था। स्कूल में वे हमें बतलाते थे कि Bible में बच्चे को 'नन्हा मसीहा' कहा गया है। आने वाले बुढ़ापे से लाला जी का, जीवन के प्रति उत्साह शिथिल नहीं हुआ था। सरकारी नौकरी से फ़ारिग़ होकर उन्होंने जम्मू के श्री वेदमन्दिर में समाज-सेवा करने का उत्तरदायत्वि सम्भाला, जिसे वे कई वर्षों

तक निभाते रहे। धूप हो या बारिश, लाला जी हर रोज शाम को वेद मन्दिर में जाकर उस जगह की व्यवस्था को देखते थे। वे अपने नाम के अनुरूप **'ईश्वर के दास'** ही थे। लाला जी को प्रकृति ने **कल्पनाशील हृदय** और **विवेकशील मस्तिष्क** दिया था। इसी लिए उनमें आध्यात्मिकता का आलोक भी था। वे सच्चे भगवद् भक्त थे और मानते थे कि यह संसार उसी की लीला है। वे अपने सभी काम, उसी ईश्वर को समर्पित करने की भावना से करते थे।

लाल ईश्वरदास मींगी जैसे व्यक्ति संसार में बिरले पैदा होते हैं। वे चाहे आज अपने **भौतिक** शरीर के साथ हमारे बीच में नहीं हैं लेकिन उनके जीवन-**सिद्धान्त आज भी ह**मारा मार्ग-दर्शन करने के लिए जीते-जागते हैं।

मैं जब भी उनको याद करता हूं, मेरा माथा श्रद्धा से झुक जाता है।

30.5.1997

कैलाश नाथ 'मैकश'
मकान नं. 170, मस्तगढ़,
जम्मू

-0-

नं. 4

प्रिंस ऑव वेल्ज़ कालेज, जम्मू की
बी. टी. क्लास के इन्चार्ज प्रोफेसर
के पद से सेवा-निवृत्त होने पर,

लाला ईश्वरदास मींगी B.A., B.T., की सेवा में

श्रद्धांजलि

महोदय, यह एक ऐसा अवसर है, जब हमारे हृदय खुशी और अवसाद (दु:ख) से भरे हुए हैं। आपने अपने जीवन के पिछले 34 वर्षों में मुख्याध्यापक, इन्स्पैक्टर ऑव स्कूल्स, और अन्त में अब इस कालेज के ट्रेनिंग विभाग के

अध्यक्ष - प्रोफेसर के रूप में, उन सभी की भलाई के लिए अनथक परिश्रम किया है, जिन्हें यह सौभाग्य मिला है कि वे आपके चरणों में बैठकर कुछ सीखें। हम यह बात भी अच्छी तरह जानते हैं कि जीवन में इतने लम्बे अर्से तक अपना कर्तव्य-पालन करने के बाद मिलने वाला यह अवकाश, आपको विश्राम करने का अवसर देगा जिसके आप पूर्णरूप से हक़दार हैं। यह हमारी स्वार्थ-भावना होगी यदि हम यह कामना करें कि आप कम से कम ट्रेनिंग के इस सत्र के समाप्त होने तक हमारा नेतृत्व सम्भाले रहें। हम समझते हैं कि आप जैसी सौम्य प्रकृति वालों के लिए सामाजिक-क्षेत्र में काम करने के कई आग्रह आपकी प्रतीक्षा में होंगे। एक उपयोगी जीवन की, इससे बढ़कर सार्थकता क्या हो सकती है, कि अपने जीवन के कर्त्तव्यों का सुचारू रूप से पालन करने के बाद वह अपना बाकी जीवन ईश्वर के निमित्त अर्पण कर सके।

हमारा यह सौभाग्य रहा है कि विद्यार्थी अथवा अध्यापक के रूप में हमें आपके साथ समय बिताने का और आपके कर्त्तव्य-निष्ठ, आदर्श जीवन से प्रेरणाएं प्राप्त करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ, जो जीवन रियासत में शिक्षा का प्रकाश फैलाने में व्यतीत हुआ है।

हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपके कोमल अनुशासन तथा सहज तथा शिष्टाचार के प्रभाव से हमें अध्यापक के रूप में अपना कर्त्तव्य निभाने की जो प्रेरणा मिली है, वह हमें अन्यथा कभी प्राप्त नहीं होती।

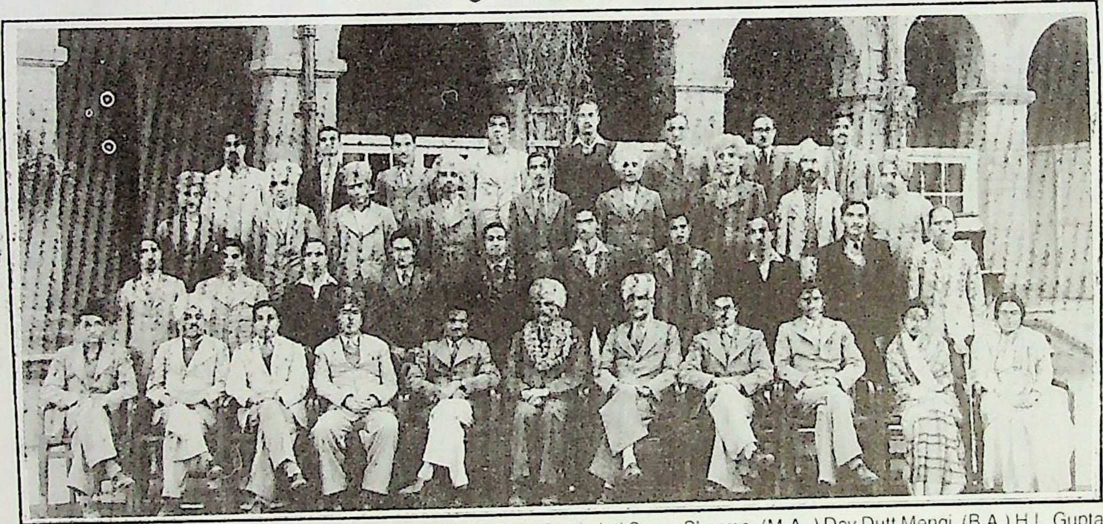
जम्मू, नवम्बर 20, 1941

हम हैं आपके कृपापात्र,
बी.टी. क्लास के विद्यार्थी

[इस मोनोग्राफ के पाठक इन सभी श्रद्धांजलियों के मूल अंग्रेज़ी लेख परिशिष्ट (ए) में सफा 86 पर देख सकते हैं।]

पठन-पाठन की लम्बी यात्रा के समापन पर विदाई समारोह

P.W. College Jammu (Nov. 1941)



Mufti Jalal-ud-Din, (BT) Shiv Kumar Gupta, (M.A). G.M Qari, (B.A.) Joti Sarup Sharma, (M.A.,) Dev Dutt Mengi (B.A.) H.L. Gupta (M.A,B.T.) Qazi, Zahur-ud-Din. (M.A.,B.T.) Pt. Sri Niwas, (M.A.,L.L.B.) Dina Nath Dhar, (M.A.)Prem Nath Nehru, (B.A.) Moh'd Amin Faruqi, (B.A.) M.M. Kazim, (B.A.) K.A. Shahab, (B.A.B.T.) Pt. Prithi Nath, (B.A.) Pt. Janki Nath, (B.A.) S. Jaswant Singh (B.A.) Ram Nath Sharma, (B.A.) N.N Bhan (B.A.) N.L. Ambardar (B.A.) Abdul Ahad, (B.A.) K.M.Yusaf, (B.A.) Pt Kashi Nath, (M.A.) Bashir Hussain (B.A.) Moh'd Afsar Khan (B.A.) Nizam-ud-Din Sheikh, (B.A.) K.K. Bali, (B.A.) Malik Nur Moh'd Khan (B.A.) Moh'd Akbar Esq. (B.A.B.T.) S.L. Seru Esq., (M.A.B.T.) L.D. Suri Esq., (M.A. M.Ed.) N.L. Kitru Esq., (B.A.B.T.) G.L. Gupta Esq., (Principal) L. Ishwar Dass Mengi (B.A. B.T., Prof Incharge) Chand Mal Esq., (M.A., B.T.) Chunishyam Esq., (M.Sc., B.T.) M. Bashir Qureshi (B.A.) Secretary.

नं॰ 5

ओं

स्वर्गीय ला॰ ईश्वर दास जी मींगी ने श्री वेद मन्दिर कमेटी में मन्त्री के पद पर ही 1943 से 1972 तक ध्यान, लग्न, श्रद्धा और धैर्य से सफलता-पूर्वक अपने आपको यहां का सेवक समझ कर काम किया। वो कहते थे कि मैंने श्री वेद मन्दिर की सेवा के लिए प्रतिदिन 2 दो घंटे दान किये हैं। इस टाईम के अन्दर मुझ से कोई भी काम करवा लें। सचमुच ही वो निम्न लिखित काम करते रहे...... जैसे दफतर का काम, बागीचों का काम, पढ़ाने का काम, सफाई का काम, हवन, पूजा आदि किया करते थे। हर रविवार को वो अपने साथी, पांच:-छ: रिटायर्ड टीचरों को साथ लेकर आते थे और सभी मिलकर अनाथ बच्चों को पढ़ाते थे।

सन् 1947 से पहिले यहां पर संस्कृत-हिन्दी विद्यालय था जिसमें संस्कृत की प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री, तथा हिन्दी की रत्न, भूषण, प्रभाकर की पढ़ाई होती थी।

सन् 1955 में लाला जी ने अपने सदस्यों के सहयोग से अंधविद्यालय चलाया, जो 1960 में सरकार ने अपने अधिकार में ले लिया।

सन् 1961 से 1972 तक मींगी जी ने अनाथालय **बालनिकेतन** चलाया।, जितना समय वो मंत्री का काम करते रहे, उतना समय ही मैं (ठाकुरदत्त शास्त्री) प्रबंधक का काम करता रहा हूँ।

लेखक
ठाकुरदत्त शास्त्री
प्रबंधक श्री वेद मन्दिर
जम्मू
1-2-1997

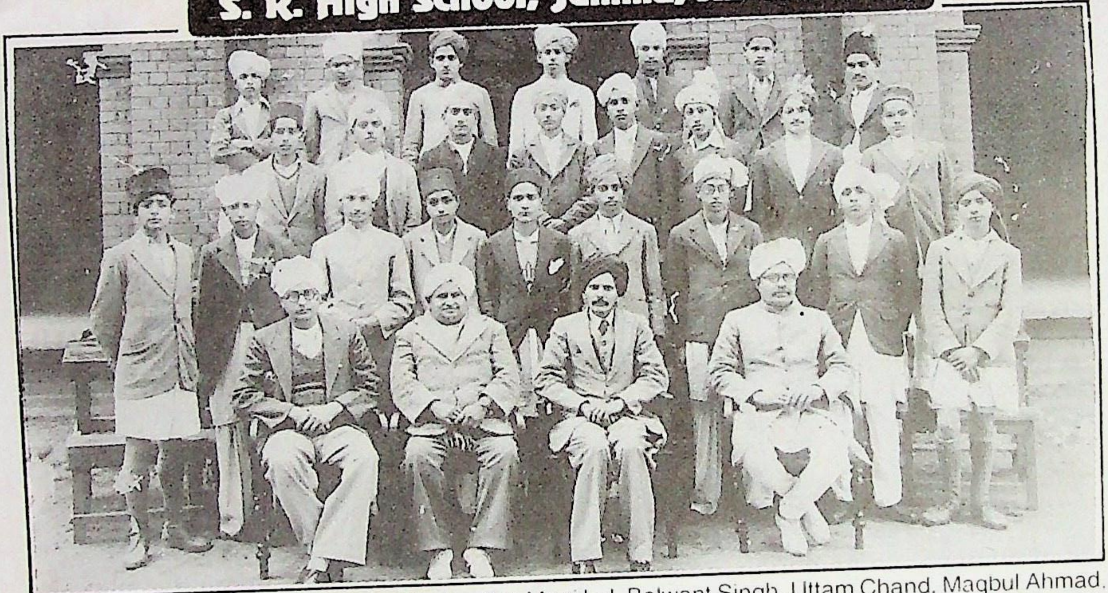
अध्याय-छः

जीवन-यात्रा का महत्त्वपूर्ण तीसरा चरण

लाला ईश्वरदास मींगी की जीवन-यात्रा का दूसरा चरण रोचक तो है लेकिन **असामान्य** (Extraordinary) नहीं है। उनकी जीवन-यात्रा का पहला चरण जिसमें उनके बचपन, लड़कपन और कालेज की पढ़ाई आदि शामिल हैं, अवश्य ही, कई कारणों से, कठिनाइयों से भरा और संघर्ष-पूर्ण रहा है। इस छोटी अवस्था में उन्हें बार-बार अपना आश्रय-स्थल बदलना पड़ा, क्योंकि उनके पिता लाला जगतराम मींगी को अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए प्राइवेट नौकरियों के लिए हर तरह की परिस्थितियों से समझौता करना पड़ा था। जब उनके बच्चों की शिक्षा तथा उनकी दूसरी आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व बढ़ता जाता था तो उत्तरोत्तर कम वेतन वाली नौकरी को भी उन्हें स्वीकार करना पड़ा था। लाला ईश्वरदास को विद्यार्थी जीवन में, इन्हीं कठिनाइयों का पग-पग पर सामना करना पड़ा था। लेकिन उसके अन्दर का विद्यार्थी **प्रतिभावान** भी था और विद्या हासिल करने का उसका संकल्प भी असाधारण तौर पर दृढ़ था। इसीलिए उसे इस सफर में कभी असफल होने की ग्लानि नहीं देखनी पड़ी थी।

इस ऊबड़-खाबड़ सफर को पूरा करने के बाद, उनकी नई यात्रा बहुत सुगम और सफल रही थी। बी. ए. पास करने के बाद सन् 1908 ई. में गवर्नमैंट हाई स्कूल, मीरपुर में साठ रुपए मासिक वेतन पर उनकी नियुक्ति हो गई। अगले दो वर्षों में उन्हें महकमे की तरफ से पूरी तनख्वाह पर लाहौर जा कर S.A.V. और B.T. ट्रेनिंग करने का सुअवसर मिला। अध्यापक बनना उनका स्वप्न था। वह पूरा हुआ। और इस पर वे बड़ी सफलता के साथ उन्नति करते हुए आगे बढ़ते रहे और **हैडमास्टर** हो गए। इस पद पर काम करते हुए

S. R. High School, Jamma, XB 1934-35



Hoshnak Singh. Khurshid Hussain. Vashu Dev. Muni Lal, Balwant Singh. Uttam Chand, Maqbul Ahmad. Brahm Datt, Raja Ram. Daya Ram, Sanpuran Singh. Kartar Nath, Abdul Rashid, Durga Dass, Raghunath Dass. Matlub Hussain. Muhamad Mukhtar, Shive Datt, Khurshid Ahmad, Krishan Gopal, Santosh Singh, Kidar Nath. Tapeshwar Nath Hazari Lal

R.N. R. Madan B.A.L.T. Ist. Math. Tr. Tutor.	L. Keval Kishan Khullar B.Sc. 2nd Master.	L. Ishar Dass Maingi B.A.B.T., Head Master	P. Thakar Dass B.A.S.A.V. 3rd Master

उन्होंने जम्मू प्रान्त के प्राय: सभी उल्लेखनीय हाई स्कूलों में अपने स्वभाव और लग्न के कारण लोकप्रियता और कीर्ति पाई। फिर वे उन्नति करके स्कूल-इन्स्पैक्टर बन गए और वहीं से एक पग और बढ़ा कर, प्रिंस ऑफ वेल्स कालेज जम्मू में खुलने वाली बी. टी. क्लास के इन्चार्ज प्रोफेसर हो गए। उसी पद पर काम करते हुए नवम्बर, 1941 ई० में वे सेवा-निवृत्त हुए। उन्हें रियासत के शिक्षा-विभाग में 32-33 वर्ष तक काम करके चाहे अपने दो छोटे भाइयों से पैन्शन कुछ कम मिली हो, लेकिन, उन दोनों भाइयों की तुलना में समाज में प्रतिष्ठा और कीर्ति बहुत मिली। उनके ये 30-32 वर्ष जिस सन्तोष के साथ बीते उसे रुपओं-पैसों में तोला नहीं जा सकता।

लेकिन लाला ईश्वरदास मींगी को जम्मू के सामाजिक जीवन में उनकी जिस बात ने असाधारण प्रतिष्ठा का पात्र बनाया है वह थी सेवानिवृत्त होने के बाद, सन् 1943 से लेकर सन् 1972-73 तक, लगभग 28-29 वर्ष, **अनथक समाज-सेवा** के व्रत का पालन करना। इस कार्य के बदले में उन्होंने न कोई वेतन लिया, और न किसी ने किसी समारोह में उनका अभिनन्दन किया। समाज-सेवा का पथ स्वार्थपूर्ण राजनीति के मार्ग से बिल्कुल भिन्न होता है। राजनेता, अपनी जै-जैकार करने वाले लोगों की भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं, जबकि समाज-सेवक यह यत्न करता है कि उसके किए हुए काम की वाहवाही न हो। गुमनामी में रह कर काम करने में ही उन्हें संतोष मिलता है।

मैंने "श्री मींगी (हैडमास्टर) से मेरी पहली मुलाकात" (अध्याय पहला) में श्री मींगी के साथ, जब वे श्री रणबीर हाईस्कूल में हैडमास्टर थे, **अपनी पहली मुलाकात** की चर्चा करके कहा था कि उनके साथ मेरी दूसरी मुलाकात श्री वेद मन्दिर जम्मू में हुई थी। उनके साथ मेरी यह दूसरी मुलाकात उनसे मेरी पहली मुलाकात की अपेक्षा ज्यादा प्रभावपूर्ण और ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही।

मैं संस्कृत भाषा का विद्यार्थी रहा हूँ। मेरे मन में किसी संस्कृत-कवि की यह पंक्ति ऐसी अंकित हुई है कि फिर वह उसी तरह बनी रही, मिटी नहीं। पंक्ति यह है:-

"सेवा-धर्मः परमगहनोः, योगिनामप्यगम्यः"

अर्थात "**सेवा** का मार्ग बड़ा दुर्गम मार्ग है, **योगी** भी इस मार्ग पर चलने से घबराते हैं।"

सेवा के पथ पर चलने वाले व्यक्ति में 'मैं' (अहम्)का भाव सर्वथा निर्मूल हो जाना चाहिए। "**यह मैंने किया है, यह मेरी उपलब्धि है**"- यह होता है 'अहम'। सेवा-व्रत का पालन करने वाले व्यक्ति को, सब से पहले अपने इसी अहम से 'मुक्त' होना पड़ता है।

लाला ईश्वरदास के लड़कपन में ही, दो बातें विशेष रूप से उभरने लगी थीं। एक संयम और दूसरी प्रत्येक घटना के बाद उस घटना का **नैतिक निष्कर्ष** (Moral Conclusion)निकालने की प्रवृत्ति। रावलपिंडी में दूसरी बार जाकर जब वह मिडिल क्लास में पढ़ रहा था तो स्कूल के मार्ग में कुल्फी बनाने वाले की दुकान पड़ती थी। कुल्फी खाने की लालसा तो मन में उठती थी लेकिन कुल्फी खरीद सकने योग्य पैसे पास नहीं थे। कुछ दिनों के लिए स्कूल पहुंचने का रास्ता बदल लिया। चार दिन का जेब खर्च जमा करके जब दो आने अपने पास जमा हो गए तो दूसरे दिन कुल्फी वाले की दुकान पर जा कर कुल्फी खाने का आनन्द उठाया और फिर कुल्फी वाली दुकान के पास से जाने वाला रास्ता छोड़ दिया। है न यह उस बालक का, कमाल का **संयम** ! उसने घर के नौकर को रसोई में आटा चुराते हुए देख लिया था लेकिन इस बात पर उसने हो-हल्ला नहीं किया। सिर्फ विचार किया। और वही निष्कर्ष निकाला जो पंचतंत्रकार ने अपनी इस जगत-प्रसिद्ध रचना में एक दृष्टान्त के बाद निकाला

था। ईश्वरदास ने अपने कमसिन मन में विचार करके पाया कि सात रुपए महीने के वेतन पर काम करने वाला यह नौकर अपने परिवार को पालने के लिए इस तरह की चोरी करने पर मजबूर हुआ है। पंचतंत्रकार ने भी यही निष्कर्ष निकाला था। उसने कहा है: **"बुभूक्षितः किन्न करोति पापम्"** भूखा आदमी हर तरह का पाप करने को बाध्य हो जाता है।

श्री मींगी जी के जीवन की ये दोनों घटनाएं देखने में अत्यन्त साधारण घटनाएं लगती हैं, लेकिन ये और इसी तरह की कई दूसरी छोटी-छोटी घटनाएं ही इस तथ्य की सूचक थीं कि जिस बालक के जीवन में ये ऐसी घटनाएं घट रही हैं, उस बालक में एक अत्यन्त सफल व्यक्तित्व की रूपरेखाएँ छिपी हुई हैं। यह सत्य प्रत्यक्ष हुआ जब एक सफल शिक्षक और शिक्षाधिकारी के रूप में, सरकारी सेवा के 32-33 बरस पूरे करके भी लाला ईश्वरदास जी ने घर में बैठ कर विश्राम करने की बात नहीं सोची। वे शरीर से अवश्य दुबले थे, लेकिन इस दुबले शरीर में उनका उत्साही मन सोच रहा था कि अभी उसे अपने देश का, अपनी धरती का और अपने समाज का **ऋण** चुकाना है। एक कर्त्तव्य को निपटा कर फारिग हुए थे कि दूसरा महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य बुलाने लग गया। समाज-सेवा के लिए मन उत्सुक हो उठा। किसी धार्मिक अथवा राजनयिक सभा-संस्था से जुड़ कर काम करने के लिए उनके मन में कोई रुचि नहीं थी। उन्हें किसी ऐसे, समाज-सेवा के क्षेत्र की तलाश थी जहां उनकी भावनाओं को, स्वतंन्त्र रूप से काम करने का सन्तोष मिले।

जम्मू नगर में ऐसी एक आदर्श जगह और संस्था मौजूद थी, जिसे श्री मींगी जैसे व्यक्ति की तलाश थी, जो मन, वचन और कर्म से समाज-सेवा करने के लिए समर्पित हो। वह आदर्श जगह और संस्था थी जम्मू नगर के उत्तरी कोण में स्थित, 84 कनाल के विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ **श्री वेद मन्दिर**। यह 84 कनाल का भूखंड उन्नीसवीं सदी के शुरू के बरसों तक, पास

के रामनगर नाम के जंगल का ही एक हिस्सा था और यहां भी कई प्रकार के हरे भरे वन्य वृक्षों की भरमार थी। यहां पिछले पचास पचपन वर्षों से आजतक इस स्थान के **प्रबन्धक** (Manager) के रूप में काम कर रहे श्री ठाकुरदत्त शास्त्री ने बतलाया कि एक स्वामी **चम्पानाथ** योगी, नवम्बर, 1916 ई० में इस जगह पर आए थे। दो-चार दिन के बाद महा० प्रताप सिंह को पता चला कि कोई बड़ा तेजस्वी साधु, जम्मू शहर के **मुहल्ला हवेली बेगम** (जिसे आज कल **कर्णनगर** कहा जाने लगा है) के सामने, जंगल में धूनी जला कर बैठा है। महा० प्रताप सिंह साधुओं-फकीरों का बड़ा सन्मान करते थे। वह मंडी मुबारक में अपने महल से चल कर वहां आकर चम्पानाथ योगी से मिले। महाराजा ने उन्हें किसी दूसरी सुविधा-पूर्ण जगह में चल कर रहने के लिए कहा। चम्पानाथ नहीं माने। कहने लगे "मैं इसी स्थान को" **वेद मन्दिर** बनाना चाहता हूं, यहां वेदों का पठन-पाठन हो। वेदों का सन्देश जन-जन तक पहुंचे। यहां एक गौ-शाला बने और गौ-सेवा हो। तीसरे निर्धन लोगों को आश्रय मिल सके।

महा० प्रताप सिंह ने 84 कनाल का यह एकान्त भूखंड श्री चम्पानाथ योगी को इन **तीन उद्देश्यों** की पूर्त्ति के लिए लिख दिया। 20 दिसम्बर 1916 ई० को यह दस्तावेज़ लिखा गया था। **श्री चम्पानाथ** यहां दस वर्ष तक टिके रहेऔर फिर **पुरमंडल** के पास **देवन** नाम के गांव के बाहिर एक पहाड़ की गुफा में जा टिके। 10-11 वर्ष के बाद वहीं उनकी मृत्यु हुई। चम्पानाथ ने जिन तीन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए इस जगह को स्वीकार किया था, उन तीनों उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए अपने **प्रयत्न** का श्री गणेश उन्होंने यहां कर दिया था।

सन् 1926-27 ई० में श्री चम्पानाथ **वेद मन्दिर** की व्यवस्था का काम जम्मू के कुछ सरकर्दा शहरियों की एक प्रबन्ध-कमेटी को सौंपकर यहां से विदा हुए। उनके एक शिष्य थे **इन्द्रनाथ**, जिन्हें इस लेखक ने (अर्थात् मैंनें) वेद मन्दिर में एक 'वीर अभिमन्यु आश्रम' के कर्त्ता-धर्त्ता के रूप में देखा है।

बहुत कुशल तीरअन्दाज़ थे वह। उड़ती चील को अपने तीर से नीचे गिराने का उनका एक कौशल मैंने वेद मन्दिर में, एक समारोह के अवसर पर देखा था।

जिस प्रबन्ध-कमेटी का गठन श्री चम्पानाथ स्वयं कर गए थे,जम्मू के अपने समय के एक प्रमुख समाजी कार्यकर्त्ता, **ला॰ हंसराज** (महाजन) उस कमेटी के मंत्री थे। वस्तुत: वे ही वेद मन्दिर का **योग-क्षेम** देखने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। वे 16 बरस तक वेद मन्दिर कमेटी के मंत्री-पद पर रहेऔर 16 बरस तक वे लगातार रोज़ शाम को 2-3 घंटे वेद मन्दिर में गुज़ारते थे। जम्मू की एक महान् विभूति थे स्व॰ लाला हंसराज। सन् 1944 में 78 बरस की आयु भोग कर वे स्वर्ग सिधारे थे। उनके बाद वेद मन्दिर कमेटी के मंत्री पद पर आए हमारे कथा-नायक **लाला ईश्वरदास मींगी**, जिन्होंने लाला हंस राज की कार्य-प्रणाली की परम्परा को जीवित रखा। श्री मींगी सन् 1943 ई॰ से सन् 1972 ई॰ तक, लगभग 29 बरस इस महत्त्वपूर्ण जगह की निगरानी करते रहे और इसे, उसके मूल उद्देश्यों के अनुरूप, व्यवस्थित और विकसित करते रहे। लाला हंसराज के समान ही वे भी इन 29 बरसों में प्रतिदिन यहां आते रहे और यहां सेवा का काम करते रहे।

लाला मुल्कराज सराफ ने सन् 1969 ई॰ के अन्त में लाला ईश्वरदास को पत्र लिख कर, अपने प्रकाशित होने वाले अंग्रेज़ी ग्रंथ *"J&K Year Book & Who is Who"* के लिए अपने जीवन की संक्षिप्त जानकारी देने के लिए निवेदन किया था। श्री मींगी ने जनवरी 1970 ई॰ को, दो पन्नों में लिख कर निज जीवन-सम्बन्धी जो जानकारी सराफ़ साहब को भेजी थी, उसकी एक Copy उनके कागजों में सुरक्षित थी। इसमें उन्होंने सरकारी सेवा से रिटायर होकर, वेद मन्दिर में जो इतने बरस तक समाज-सेवा की, उसके सम्बंध में लिखा है :

"नवम्बर, 1941 ई॰ में, शिक्षा-विभाग से सेवानिवृत्त होने से कुछ पहले ही कुछ समाज-सेवा करने की इच्छा के कारण मैंने वेदमन्दिर, जम्मू की प्रबन्ध-समिति के मन्त्री के रूप में काम करने की धारणा मन में पक्की कर ली थी। फलत: सन् 1943 ई॰ में मैंने यह उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। तब से लेकर आज तक मैं उसी पद पर सेवा-कार्य कर रहा हूं। इस अवधि में मैंने नीचे लिखी कुछ संस्थाओं की वहां स्थापना करवाई है :

(i) एक अन्ध-विद्याललय । इस संस्था को चलाने का उत्तरदायित्व अब रियासत के **समाज-कल्याण** महकमे ने ले लिया है।

(ii) अनाथ बच्चों के लिए एक **बाल-निकेतन** नाम का अनाथालय, जहां इन बच्चों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ कुछ व्यावसायिक काम भी सिखलाए जाते हैं। वेद-मन्दिर में, इन बच्चों के रहने तथा भोजन आदि का प्रबन्ध भी किया गया है।

(iii) दुर्बल तथा **वृद्ध लोगों** के लिए एक 'होम्' (**HOME**) तथा एक **प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र** भी स्थापित किया था। अब दो स्वतन्त्र प्रबन्ध-समितियें इनकी व्यवस्था चलाती हैं।

(iv) एक गौशाला, जिसकी व्यवस्था का उत्तरदायित्व अब स्थानीय सनातन-धर्म सभा ने अपने ज़िम्मे ले लिया है। इस तरह वेद मन्दिर, जम्मू में, मानव-कल्याण के कई काम किए जा रहें हैं। इस मन्दिर की स्थापना महा॰ प्रतापसिंह जी ने संवत् 1972 वि॰ (अर्थात सन् 1916 ई॰ के शुरू में) की थी।

श्री मींगी जी द्वारा लिखा गया उनका अपना जीवन-वृत्त (**Bio - data**) पन्ना 75 पर छापा गया है।

जम्मू रेडियो से प्रसारित उनकी एक डोगरी वार्त्ता

लाला ईश्वरदास मींगी ने रेडियो जम्मू से, समाजी विषयों पर अपनी लिखी कुछ वार्त्ताएं भी प्रसारित की थीं। नमूने के तौर पर उनकी **एक डोगरी वार्त्ता** यहां दी जा रही है, जिसका शीर्षक था:

'मुलखै इच अन्ने, लूले, लंगड़ें दे कल्याण गित्तै'

[देश में अन्धे, लूले और लंगड़े लोगों के कल्याण के लिए]

यह वार्त्ता उन्होंने 21.12.1964 ई० के दिन प्रसारित की थी। इस वार्त्ता की दो बातें मुझे महत्वपूर्ण लगीं। एक तो इस वार्त्ता की भाषा **डोगरी**, और दूसरी, इन अभागे लोगों की भारत-भर में दयनीय अवस्था, और तत्सम्बंधी आंकड़े आदि। इस समय श्री मींगी **वेदमन्दिर** में क्रियात्मक रूप से इस तरह की सामाजिक समस्याओं से दो-चार हो रहे थे। **अन्ध-विद्यालय** और उनके लिए छात्रावास स्थापित करने की परिकल्पना, **वृद्धाश्रम** का संचालन और अनाथ बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध और उनके खाने-पीने तथा रहने के लिए आवास की व्यवस्था करना आदि। इस संस्था का नाम **बाल-निकेतन** है। यह रेडियो वार्त्ता, उनके उस समय के समाज-सेवी किरदार पर प्रकाश डालती है। यही इसका महत्व है। उनकी उस वार्त्ता को उसके कुछ हिज्जे (शब्द-जोड़) दुरुस्त करके, उसे दुबारा लिख कर यहां शामिल कर रहा हूं। (देखें सफा नं. 79)

इसी वार्त्ता के साथ, अंग्रेज़ी भाषा में लिखे उनके एक पत्र को भी यहां, उनके इस 'मोनोग्रॉफ़' में शामिल करना मुझे ज़रूरी लगा। यह पत्र उन्होंने 10.3.1970 ई० के दिन, रियासत के उस समय के राज्यपाल (गर्वनर) महोदय को लिखा था। जिसका मकसद था कि राज्यपाल महोदय शहर के उन नागरिकों के बुलाएं, जो उस समय 70-75 वर्ष की आयु पार कर चुके हैं, और जो समाज-सेवा का कोई न कोई अच्छा काम कर सकते हैं और उन्हें ऐसा काम

करने के लिए प्रेरित करें। श्री मींगी ने इस पत्र में उन्हें लिखा था:

> "The main object of my request is to find ways to inspire a large number of persons of advanced age to undertake social service. This will result in the welfare of the masses and enable old people to had healthy and useful life ."

माननीय राज्यपाल के प्राईवेट सकत्तर श्री तेजासिंह ने श्री मींगी को उनके पत्र के मिल जाने की सूचना दी थी। लेकिन उनके पत्र में लिखी उनकी प्रार्थना की कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। काफी समय तक राज्यपाल महोदय से प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करके, अन्तत: श्री मींगी ने ला० मुल्कराज सराफ और वृद्धाश्रम के प्रबन्धक के रूप में काम करने वाले जम्मू के **एक आदर्श समाजसेवी, श्री रामनाथ प्रभाकर** से विचार-विमर्श करके, स्वयं ही ऐसे लोगों की एक-दिवसीय कान्फ्रंस वेद-मन्दिर परिसर में करने का निश्चय किया।

इस सम्बन्ध में उनके हाथ का, उर्दू में लिखा एक **प्रारूप** (Draft) मुझे मिला है, जिसमें उन्होंने, उस सम्मेलन में बोले जाने या पढ़े जाने वाले अपने भाषण की एक रूप-रेखा लिखी है उनकी उसी रूप-रेखा से मुझे पता चला कि श्री मींगी जी ने स्वयं शहर के वयोवृद्ध व्यक्तियों की यह बैठक वेदमन्दिर में बुलाई थी।

उस बैठक में कितने लोग शामिल हुए ? उस सम्मेलन को और किन लोगों ने सम्बोधित किया, तथा उसका परिणाम क्या निकला ? इन बातों की सूचना दे सकने योग्य कोई रिकार्ड उनके कागज़ों में मुझे नहीं मिला। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह सम्मेलन श्री मींगी की समाजसेवी लग्न और प्रतिबद्धता को अवश्य दर्शाता है। उनका वह पत्र तथा उनके भाषण का प्रारूप दोनों मैंने यहां शामिल किए हैं।

लाला ईश्वरदास मींगी का जीवन-वृत्त (Bio-Data)

श्री मींगी ने अपना यह जीवन-वृत्त 10 जनवरी 1970 के दिन, जम्मू में पत्रकारिता के अगुआ श्री (अब स्व॰) लाला मुल्कराज सराफ को भेजने के लिए त्यार किया था। श्री सराफ ने श्रीनगर (कश्मीर) से श्री मींगी को एक (Form) भेज कर निवेदन किया था:

My dear respected meangi Sahib,

You will be glad to know that I have planned to bring out a volumonous J&K Year Book & Who's Who 1970. It will contain more than one thousand (1000) leading publicmen, litterateurs, administrators, industrialists and other dignitaries in the state. You undoubtedly hold a high position of your own. I am to request you, therefore, to kindly let me have the requisite information on the enclosed form as soon as possible.

Dated : 29 -11-1969

Yours Sincerely
Mulk Raj Saraf
Chief Editor

श्री ईश्वरदास मींगी ने, इस फार्म के अनुसार अपने विषय में जो **जानकारी** श्री सराफ साहब को भेजने के लिए त्यार की थी, वह उनके सरकारी नौकरी के लम्बे अर्से पर भी कुछ प्रकाश डालती है। जैसे कि हैडमास्टर के रूप में उन्होंने किन--किन इलाकों के हाई स्कूलों में काम किया। इस पद से उन्नति करके वे इंस्पैक्टर के रूप में और अन्त में बी॰ टी॰ क्लास के इन्चार्ज-प्रोफेसर के रूप में काम करके सेवा-निवृत्त हुए।

उन्होंने इस जीवन-वृत्त में इस बात की ओर भी संकेत किया है कि सरकारी नौकरी के दायित्व को निभाने के बाद जब उन्होंने समाज-सेवा करने की इच्छा से प्रेरित हो कर वेद मन्दिर की प्रबन्धक कमेटी के अवैतनिक मन्त्री-पद का भार सम्भाल कर वहां लगभग 28-29 वर्ष तक, **लग्न**, **निष्ठा** और **सेवा-भाव** (के अनुशासन) से काम किया तो वहां किन-किन सेवा संस्थाओं की स्थापना की। मेरी नज़र में लाला ईश्वरदास मींगी अपने जीवन में की गई इस लम्बी समाज-सेवा के कारण ही चिर-स्मरणीय हो गए हैं।

1. **Name:** ISHWAR DAS MEANGI
2. **Date & Place of birth:** 14th Maghar 1943 Bik. or 28th Nov. 1886 A.D. Rawal Pindi.
3. **Education:** B.A., S.A.V., B.T.
4. **Name of wife:** Smt. Prabh Devi. year of marrage: 1915 A.D.
5. **Profession:** Teaching (Teacher, Headmaster, Inspector and Professor)
6. **Past career:** After passing B.A. Degree exam. from Khalsa college ASR in 1907(where I won two gold medals for standing first in English & aggregate) I became a teacher. One year after I was sent to Training College Lahore where I passed S.A.V. exam. in 1909 in I division, standing first in the province in English & aggregate and was awarded a gold medal and a prize. Then I passed the B.T. Degree exam. in 1910. I resumed my work in the

education deptt. of J&K state and continued to work till I retired at the termination of 55 years of my life as professor in-charge of B.T. Class in the Prince of Wales college Jammu. As Headmaster of high schools I had worked at Mirpur, Samba, Jammu, Akhnur, Srinagar, udhampur and Bhadarwa and as an inspecting officer I had toured through Udhampur and Kathua districts.

7. **Important events in my life:-** When I was young I was greatly influenced by the sacrifices of Lala Lajpat Rai, Tilak, Nehru and Gandhi ji and took great interest in the study of books written by them. Their valuable services to the motherland, dauntless courage and popularity led me to realise that a man's worth is measured only by the good that he does to his fellow beings and not by what he owns.

8. **Notable achievements:** Before I was about to retire in Nov.1941, I, having been imbued with a desire for social service, joined as secretary of Ved Mandir committee Jammu, and since then I have been there as such. During this period I have been instrumental to the committee in establishing in the Mandir a School for the Blind (now taken over by the J&K state), an orphanage (where 29 orphans are being brought up and given academic and industrial instruction, a home for the old and infirm including a nature-cure centre (Managed by sepa-

rate committees) and a Gau-Shala (managed by Sanatan Dharm Sabha Jammu). Thus good humanitarian work is being done in the Mandir, established in 1972 Bikrami, by Maharaja Partap Singh Ji Bahadur of revered memory, with three objects in view,

(i) Service of the poor

(2) Protection of cows and

(3) Spread of Vadic culture.

Efforts are now being made to achieve the remaining last object. The Indian Govt. the J&K state govt. and the philanthropists of Jammu have been helping a lot in running the above mentioned institutions. It gives me joy to state that because of my devotion to Ved Mandir I have been able to maintain my health.

I have also been sceretary of Retd. Gazetted Officer' s Association Jammu, since 15.3.1997. Bik.

9. **Publications:** Nil

10. **Awards:** Mentioned above under item 6th

11. **Any other information:** Nil

12. **Full Address:** Retired Professor, Mast Garh Street, Jammu

Dated: 10th Jan.1970

Ishwar Das Meangi
Signature

21-12-1964

Date of B.Cast.

"मुलखै इच अन्ने, लूले, लंगड़ें दे कल्याण कित्तै"

साढ़े मुलखै च करीबन 44 लक्ख बदकिस्मत अंगहीन लोक अज्ञानता करी दुखी रौंह्दे ते बेजती दा जीवन बतीत करदे न। मुलखै दे इनें बिकलांग लोकें गी समझाने दी लोड़ ऐ जे, कुसै इक अंग दी कमजोरी दे सवाए, बाकी हालतें च ओह् लोक ठीक-ठीक इन्सान न।

अक्खियें दे अन्ने लोक सब कम्म करी सकदे न, सवाए उनें कम्में दे, जिनेंगी करने आस्तै नजर जरूरी हुन्दी ऐ। बिकलांग बच्चें च बी खेडने दी तांह्ग हुन्दी ऐ। ओह् दूए बच्चें आला लेखा प्यार दे भुक्खे हुन्दे न। अपने आले-दुआले दियें चीजें बारै जानना चाह्न्दे न। इस्सै करी केइयें नग्गरें च सरकार दी तर्फा ते दानी पुरखें पासेआ केईं संस्थां चालू कीतियां गेइयां न। की जे बच्चे गै कुसै देसै दे सरमाया हुन्दे न। उन्दी योग्यता ते शक्ति कन्ने अस अपने मुलखै दी शक्ति दा अनुमान लाई सकने आं।

साढ़े देसै च लोक-राज होने करी सरकार समझदी ऐ जे जेह्ड़े बच्चे शरीरक तौर पर असमर्थ न उन्दे विकास आस्तै बी जतन कीता जाना चाहिदा ऐ।

असें गी पता होना चाहिदा जे अन्ने ओह् हुन्दे न, जेह्ड़े इक गज दी दूरी पर खुल्ले दे हत्थै दियां औंगलां नेईं गिनी सकदे। इसलै भारतवर्शै च ऐसे लोकें दी गिनती 22 लक्ख ऐ। इन्दे चा मते मनुक्ख 20 ते 40 साल दी आयु दे दरम्यान अपनी नजर गुआई चुके दे न। इस आयु कोला पैह्लें जेह्ड़े अन्ने होई जन्दे न, ओह् मते सारे माऊ-बब्बा दी लापरवाही करी हुन्दे न।

जम्मू ते कश्मीरा बिच बी दौनें थाह्‌रें इक-इक ऐसा स्कूल सरकार पासेआ चलाया जा करदा ऐ,जित्थें ऐसे नाबीना बच्चें गी पढ़ना-लिखना, गाना-बजाना, कप्पड़ा बुनना, कुर्सियां ते टोकरियां बनाना, मोम बत्तियां बनाना सखालदे न। केईं अन्ने पढ़ी-लिखियै, मास्टर, बकील, ते गाना सखलाने आले उस्ताद बनियै अज्ज समाज च अपनी रोजी कमा करदे न। बोले(बहरे) आदमी दे बोलने आले अंग बिल्कुल ठीक हुन्दे न पर की जे ओह्‌ दूएं दे **बोल** सुनी नेईं सकदे, इस करी ओह्‌ शब्दें ते फ़िकरेंगी बोलना सिक्खी नेईं सकदे। इस करी बोले मनुक्ख गुंगे बी होई जन्दे नं। बोलने दी ताकत, कुदरती नेईं औन्दी, उसी दुएं गी सुनियै ते उन्दी नकल करियै हासल कीता जन्दा ऐ। बैह्‌रे जागतें गी पढ़ना-लिखना सखाने आस्तै दिल्ली, लखनऊ, नागपुर, कलकत्ता, मदरास, बम्बई आदि नगरें च स्कूल हैन, जित्थैं इनें जागतें गी केईं किस्में दे हुनर सखाने दे इन्तजाम कीते गे न। भारत च ऐसे बच्चें ते आदमियें दी तदाद इस बेल्लै 12 लक्ख ऐ। हुन बैह्‌रें आस्तै सुनने दे यन्त्र बी बनन लगे न जिन्दी मददी कन्ने घट सुनी सकने आले लोक बी गाने-बजाने ते नाटक-सिनमा आदि दिक्खने दा अनन्द प्राप्त करी सकदे न।

अन्ने ते बोले लोकें दे अलावा भारत वर्शै च करीबन दस लक्ख लूले-लंगड़े लोक बी हैन। इन्दे कन्ने पुराने जमाने च भिन्न-भिन्न देसें च के-के सलूक कीता जंदा हा, एह शायद तुस नेईं जानदे। पच्छम पासै इक लौह्‌का देस ऐ **सपार्टा।** उत्थें लंगड़ें गी पहाड़ै दी चोटी परा ख'ल्ल रुलकाई सुटदे हे, तां जे इन्हें विकलांग लोकें दा समाज पर बोझ नेईं र'वै। भारत च इन्दे कन्ने इन्ना कठोर व्यवहार ते भाएं नेईं हुन्दा पर इन्दे इलाज-मुआलजे दा मनासब ख्याल बी नेईं कीता जन्दा। पर बड्डी जंग दे बाद जिसलै भारती सपाही मती गिणती च लंगड़े होइयै वापस आए तां इन्दे इलाज आस्तै शफाख़ाने खोले गे। पूना बिच

नकली अंग बनाने दा इक कारखाना बी कम्म करा करदा ऐं। 1947 दे बाद, बम्बई, मदरास ते कलकत्ता दे सरकारी शफ़ाख़ानें च इनें लोकें दे अलाज आस्तै खास प्रबन्ध होई गेआ ऐ।

भारत सरकार दे महकमा सेहत ने अपाहजें दे पुनर्वास लेई, नेहरु जी दी याद बिच, दस करोड़ रुपएं दी इक योजना बनाई ऐ। इत्यादि .... इत्यादि

वृद्ध-कान्फ्रैंस

रियासत के माननीय राज्यपाल को लिखा, श्री मींगी का एक पत्र

पत्र अंग्रेज़ी में था, जो इस प्रकार है:

To

The Governor,
J&K State,
JAMMU.

Sir,

Most respectfully I beg to be excused for daring to encroach upon your most valuable time. I have long been trying to resist the temptation but can no longer desisat from approaching you to request that persons above the age of seventy-five may kindly be invited to tea and asked to tell :

i). What factors have contributed to the longivity of their lives and

ii). What they are now living for?

The main object of my request is to find ways to

inspire a large number of persons of advanced age to undertake social service. This will result in the welfare of the masses and enable old people to lead healthy and useful life.

As regards myself,I am more that eighty three years old and have been working as a honourary secretary of Ved Mandir, JAMMU for the last 28 years and been helpful to the Managing body of that place, in starting there-in an Orphanage, a school for the blind, which has now been taken over by state Govt. , a Home for the aged and infirm and a Gau Shala

Date. 10 -3-1970

Yours Faithfully

Ishwar Dass Meangi.

श्री मींगी जी के इस पत्र की गर्वनर महोदय के पास पहुंचने की सूचना, उनके प्राईवेट सेक्रेटरी श्री तेजा सिंह ने 13-3-1970 को श्री मींगी को दी। मालूम होता है कि गवर्नर साहब को पत्र लिखने के बाद श्री मींगी ने स्वयं अपने ही भरोसे, वेद मन्दिर में शहर के बड़े बुजुर्ग लोगों की एक कान्फ्रैंस करने का आयोजन किया। इस कान्फ्रैंस में पढ़ने के लिए श्री मींगी ने अपना जो भाषण तैय्यार किया था, उसकी एक 'रफ़'(Rough) रूपरेखा उनके कागज़ों में मुझे मिली है। यह भाषण उन्होंने उर्दू ज़बान में और उर्दू लिपि में लिखा है। जो इस तरह है:

"मैं आप से अर्ज़ करना चाहता हूं के इस कान्फ्रंस के बुलाने का ख्याल कैसे आया? मेरा एक दोस्त अपने बेटे के साथ मिलकर दुकान का काम

करते थे। किसी वजह से उन्होंने काम करना बन्द कर दिया और घूम-घाम कर ज़िन्दगी बसर करने लगे। मैंने उन से कहा के बगैर किसी शुगल के ज़िन्दगी अच्छी तरह बसर नहीं हो सकती। आइये, मेरे पास वेद मन्दिर में आकर अनाथ बच्चों की सेवा किया करो। नहीं आए। लेकिन बीमार होकर सुर्गबासी हो गए।

इसी तरह मेरे एक वाकिफ़ महकमा गर्वनरी से रिटायर होकर प्राईवेट नौकरी करते रहे। उसके खात्मा पर शहर में इधर-उधर फिरने लगे। मैंने उनसे भी कहा के अब आप कोई काम नहीं कर रहे हैं, मेरे पास वेद मन्दिर में आकर कुछ समाज-सेवा का काम करो। लेकिन वे भी नहीं आए। बाद में पता चला के वो थोड़े अर्सा के लिए बीमार रहकर चल बसे।

जब मैंने यह देखा के अकसर लोग बुढ़ापे में कुछ मुफीद शुगल न रखते हुए, वेदों में लिखी हुई सौ बरस की आयु तक नहीं पहुंचते, तो कुछ जतन करना चाहिए। मैंने गर्वनर साहब को एक चिट्ठी के ज़रीए इस्तदुआ की उम्र-रसीद: **इशखास** को बुला कर उनसे दरयाफ्त करें के उनकी लम्बी उम्र का क्या कारण है और अब किस लिए जीना चाहते हैं ? उनके सकत्तर साहब ने चिट्ठी की पहुंच बखूबी तसलीम की। लेकिन गर्वनर साहब से अपनी चिट्ठी का कोई जवाब न पाकर मैंने ब-मश्वरा लाला मुल्कराज जी सराफ एक फहरिस्त **उम्र-रसीद : इशखास** की तैय्यार की के गर्वनर साहिब को फिर लिखूं के इन लोगों को मदू किया जाए। लेकिन इसी अर्सा में गवर्नर साहब सिरीनगर चले गए। मैंने प्रभाकर (श्री राम नाथ प्रभाकर) साहब से इस बात का ज़िक्र किया। उन्होंने कहा के यह कान्फ्रंस हम खुद यहां बुलाते हैं। सो, यह कारण हुआ आपको यहां तकलीफ देने का। अब मैं आप से इस्तदुआ करूँगा के जो सवालात मैंने दावतनाम: में आपको लिख भेजे हैं, उनके बारे में

अपने ख्यालात का आप इज़हार करें के मैं आपकी बातों का निचोड़ गवर्नर साहब की ख़िदमत में भेज कर फिर इस्तदुआ करूँ के कोई ऐसा तरीका निकालें के तमाम रिटायर्ड आदमी किसी न किसी शुगल में ता-इख्तताम-ज़िन्दगी लगे रहें और लम्बी उम्र पाते हुए लोक-कल्याण **का भी काम करें।**

इस ग़र्ज के लिए मैं तजवीज़ करता हूँ के श्री .... को आज की सभा का प्रेज़ीडैंट **मुन्तखिब किया जाए।**

पहला सवाल है के आदमी की लम्बी उम्र के कारण क्या हैं?

भारत के आज़ाद होने के बाद, तेइस (23) साल के अर्सा में लोगों की औस्त उम्र 35 साल से बढ़ कर 45 तक पहुंच चुकी है। क्यों कि महकमा सेहत-व-सफाई की कोशिशों से कई बीमारियों को जड़ से उखाड़ कर फैंक दिया गया है। मसलन-मलेरिया, हैज़ा, तपेदिक, चेचक बगैरः। दूसरे, हिन्दोस्तान में दुवाइयों के कारख़ाने खुलने की वजह से दवाइयां और 'विटामिन्स' वगैरह सस्ते दामों मिल सकती हैं। और लोगों की भी ताकत-ए-ख़रीद बढ़ गई है। इस लिए भी औस्त उम्र लोगों की ज्यादा हो गई है। कई कारण ऐसे हैं, जो अब पढ़े-लिखे लोग जानते हैं। मसलन सेहत-सफाई के उसूलों पर अमल करना। ग़िज़ा का मौसम के मुताबिक ख़ाना और हज्ब ज़रूरत 'विटामिनों' का इस्तेमाल करना। तीसरे धार्मिक उसूलों पर अमल करने सी भी आयु बढ़ती है।

जैसे **ईश..उपनिषद**[1] के दूसरे श्लोक में लिखा है के "इन्सान को इस दुनियां में आकर शुभ कर्म करते हुए ही सौ साल तक जीने की तमन्ना करनी चाहिए। जो इन्सान इस रास्ते पर चलना चाहता है, उसके लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं है। इस (शुभ कर्म) के रास्ते पर चलने वाले के मन में गल्त रास्ते का मोह पैदा नहीं होता।"

उपनिषद, बड़े वाज़्या तौर पर हमें रास्ता दिखाती है कि हमें हमेशा

भलाई के, खिदमत के और सचाई के रास्ते पर चलते रहना चाहिए। जब हम कर्म को टालते हैं तो हमारी ज़िन्दगी बोझल व दुखदायक हो जाती है और हमारी उम्र कम हो जाती है।

अब कुछ ज़ाती तजरुबे की बिना पर भी मैं कह सकता हूँ कि आदमी तम्बाकू बगैरा मुज़िर आदतों में न फंसे और निष्काम होकर ज़िन्दगी में अपने फरायज़ को निभाहने की कोशिश करता रहे, जब चिन्ता-फिक्र मन को बेचैन करे तो फ़ौरन किसी मुफीद किताब के मुताले में लग जाए तो ज़िन्दगी आराम से गुज़रती रहती है और उम्र में इज़ाफा होता है।

जहां तक हामरे सामने रखा गया दूसरा सवाल है कि इस बुढ़ापे में भी हम आगे करना क्या चाहते हैं ?

मेरी बाकी ज़िन्दगी का एक ही मकसद है के मैं महाराज प्रताप सिंह जी के, वेद मन्दिर के लिए रखे गए **तीसरे मकसद** को पूरा करूँ। वेद मन्दिर कमेटी की कोशिशों को कामयाब बनाने के लिए तन-मन से जतन करुँ। महाराजा साहब ने वेद मन्दिर को तीन मकासद पूरा करने के लिए कायम किया था - (i) ग़रीबों की ख़िदमत (ii) गौ-रक्षा और (iii)**वेद-प्रचार**।

——— इति ———

---

1. *ईश उपनिषद का दूसरा श्लोकः*
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतो ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ 2 ॥

अध्याय - (सात)

जीवन और मौत-दो अटल सचाइयें !

लाला ईश्वरदास मींगी जैसे कर्मयोगी ने 25.10.1963 ई॰ के दिन, अपने पुत्र को सम्बोधित करके रिखा था:

My dear Om Prakash,

Today my age is about 74 years eleven months & some days and I do not believe that I will quit the world before I am 84 years of age. But because I have for some time past been experiencing one or other ailment, it is just possible that I may leave this world some day after I have lived for 75 years of life and entered Sanyaas Ashram. So, for your guidance I have some instructions. These are as under :

i). I have lived a reasonably happy life and therefore at the idea of departure from this world I am **neither happy nor unhappy**. My mind is peaceful. Therefore after my death there should not be any breast-beating and prolonged weeping. There may be some wailing immediately after my death so that the feeling of sorrow or grief may not remain embeded (pent up) in the hearts of some women & childred who have regard for me.

ii). Maharaja Hari Singh has been very kind to the people of JAMMU by ordering his ashes to be thrown into the Tawi. I direct you to throw my ashes into the same river.

Perhaps you know that **Lala Bindra Ban** ji (Mahajan) Retd. Governor left the same instructions to his son.

iii). When ever possible give some help or cherity to the Ved Mandir and the orphanage there.

iv). Rs 30/-(thirty) the monthly rent of three rooms in the second story may in future be given to your mothor. If the rent increases, the additional sum should also go to her. **She should be respected by you,** your wife and children during my absence, as you have been respecting me.

Rent of the other house should always be paid to V. D. Gandotra's mother or his wife or his child.

v). Convey my good wishes to all my relatives and friends.

vi). If you want my advice please know that, **economy, hard work, watchfulness and truthfulness** conduce to happiness.

vii). My funeral caremonies should be performed according to **Arya Samaj** principles and my ashes should be thrown into the Tawi.

18. 4.1964 A.D.
6.11. 2021 (V)

Yours affectionately
Ishwar Dass Meangi

25. 2. 1969

1. Last night I dreamt that I was in Srinagar. I was passing through a street where I saw Lala Bhagwan Dass standing below a building. I enquired about his arrival and invited him to come and live with me.

I am also reminded of the occassion when on a Sunday I had tea at his residence near city chowk, along with his other friends i.e. L. Dina Nath Gandotra, L. Paras Ram and Pandit Ganga Ram who are also no more in the world.

I feel that I shall also have to go soon. For this reason, I now try to see the **same soul** in each and every life in the world and be-friend all. I also make efforts to have no anxiety at all, depending on the justice of God.

16-4-69

In the morning today I recited prayers without any wavering of mind and with full concentration. I am glad and I have been able to control my mind for about half an hour.

एप्रिल सन् 1969 में ला॰ ईश्वरदास जी 83 वर्ष की आयु भोग चुके थे, इस लिए वे हर तरह के शारीरिक कष्ट को शरीर-यात्रा के अन्त की सूचना समझने लगते थे। वे आर्य-समाज के सिद्धान्तों को मानते थे। अपने पुत्र के नाम अपनी अन्तिम लिखित इच्छा में उन्होंने उन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप अपना **अन्तिम संस्कार** करने का **निर्देश** दिया था।

लेकिन अभी उनकी यात्रा का आखिरी पड़ाव छै बरस की दूरी पर था। इस शारीरिक कष्ट से उभर कर वे फिर वेद मन्दिर में कार्य-रत हो गए और 1972 ई० में उन्होंने 86 वर्ष की आयु में, वहां से अवकाश ग्रहण किया। उसके बाद लगभग 3 वर्ष वे अपने परिवार जनों के साथ अपने घर में रहे। कापी का एक पन्ना मुझे ओम प्रकाश मींगी ने दिया उस पर **29 . 9. 1975** की तारीख डाल कर ओम जी ने नोट किया था:

" Last night, father was very restless."

उन्होंने दो बातें कहीं:-

i). एक यह कि मुझे **स्वामी जी** बचाने का यत्न कर रहे हैं। कष्ट बहुत है। जीना नहीं चाहता। अब आप लोग यह उल्टी प्रार्थना करें कि मैं **इच्छा-रहित** होकर इस शरीर के बन्धन से छूट जाऊं।

ii). मेरा **चौथा** करके, **गौतम** (श्री मींगी जी का पौत्र)का विवाह 10.10.1975 की निश्चित की हुई तिथि पर कर दें।

'स्वामी' जी से अभिप्राय स्वामी सर्वप्रकाशानन्द (हरिद्वार) से था। उस समय उनके मन में महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इच्छा-रहित मन के साथ मेरा शरीर छूटे। पोते के विवाह की बात भी, उनके सचेत मन की सूचक है।

"ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।"

-0-

परिशिष्ट -A {श्री मींगी जी के बारे के बारे में लिखे गये मूल पत्र}

[I]

Esteemed Mengi ji,

I am delighted to know that you have thought of recording the great contributions made by Lala Ishwar Dass Mengi in the advancement of socio-spiritual life of Jammu. He indeed not only lived and spent the last ounce of his energy for promoting socially oriented thinking and simple living but also set a laudable example of constructive work which his fellow citizens could emulate with advantage. I had the honour of being a student of Sri Ranbir High School (now S.R.Multi-Purpose Higher Secondary School) Jammu in mid-30s when he was the head of the prestigious institution which he ran with great distinction. No teacher much less any student would ever be unmindful of the fact that Mengi Sahib might be somewhere around any time on one of his many rounds during the working hours. The result: no indiscipline, no noise, no dust, none playing truant. I am often reminded of once having been severely admonished by him after he had caught me 'red-handed' coming out of the class-room bare-headed. My explanation that it was the drill-period and as the drill-master was on leave we were actually required to go home, did not satisfy him. He was undoubtedly right in holding the view that in no case students could be permitted to remain bare-headed in the

school. Such was the practice at that time. He asked me to stretch forward my right hand. Cautioning me to beware thence-forward, he gave me a bash or two with his rule which he always wielded, even though I was the monitor of my class and also a merit scholarship holder. May be I had to be awarded an exemplary punishment. His was certainly not the rule of the rod, in reality, his noble and enobling life-style had been an immense source of inspiration for me. No wonder, I could feel the warmth of his affection and concern for the harmoni-ous development of younger generation even long after his retirement from government service, when he distinguished himself as a selfless, dedicated voluntary social worker.

If only a few more of us could persuade ourselves to follow the footprints of that good and great soul as stadfast, the life in this city of temples may be assured of far more salubrious and salutary environment. May I venture to add I see in your worthy son Dr. Gautam Mengi the making of his illustrious grandfather.

With regards,

Yours Sincerely,
Om Prakash Saraf
3. 5. 1997
(Journalist) JAMMU.

Dr. O.P. Mengi,
94, Mastgarh,
Jammu,

[II]

Lala Ishwar Das Mengi - An Embodiment of Honesty

Though I have not had the privilege of being either a student or a colleague of Lala Ishwar Das Mengi, I did have the proud privilege of serving as a teacher for a couple of years in the oldest and most prestigeous High School of the Jammu province, viz. Sri Ranbir High School, Jammu, soon after Lala Sahib had been promoted and appointed as a Professor in the newly set up Teaches' Training College at Jammu. I could smell the fragrant air of discipline and honesty generated during the stewardship of the school by Mengi Sahib. Some of the teachers, who had worked with Lala Sahib, used to relate stories of the suprise Rounds of Lala Sahib to catch hold of the delinquent teachers and students. No student dare loiter in the school premises. And every teacher was busy with his class. Of Lala Sahib's honesty, there were legends. During his entire official career extending over several decades, he is said to have used not even a pin or ink of the school for his private purposes. He led a simple and pious life. He was indeed a Karam Yogi in letter and spirit . Very rare are the people in this world, who can follow the path shown by Rishis like Lala Sahib.

(G.D.Sharma)
Retired Secretary Information
J&K Govt.)
Ganadhinagar, JAMMU.

[III]

My Reminiscences of a Great & Luminous Soul of Jammu

I was beside myself with joy & rather elevated to know that Dr. Om Prakash Mengi, the illustrious son of his illustrious father, Lala Ishwar Dass ji Mengi, a well-renowned educationist, a devoted & dedicated servant of the society as well as an enlightened and noble soul of this land of ours has decided to get the biography of his worshipful father published and released shortly, which is being compiled & written by our venerable prof. Ram Nath ji Shastri. It is really a very commendable task. I to have been approached by Om ji to put in black & white my reminiscences about Lala ji.

There is a verse in urdu.

यादे माज़ी अज़ाब हैं या रब,
छीन ले मुझ से हाफ़िज़ः मेरा।

Though now it is not so very easy for me to peep into the by-gones. I shall, nevertheless, try to recall my association with Lala ji, whom I always held in highest eseteem. I have had the privilege of working under him decades back when he was on the staff of The Model Academy at Dennisgate as headmaster of this reputed institute, while late Shri H.L. Gupta was the principal of the School.

He was every inch a truthful person and always above board in his dealings with others. In fact, he was an embodiment or a Gospel of simplicity, humility, truthfulness and hon-

esty. He was a gentleman par-excellence.The salient & chief characteristic of his life was that he was very punctual to time and he always impressed upon us for observing of punctuality and having a sense of responsibility. He would, often, dole out such a piece of advice to the students as well. He would, often, quote the Roman Ideal that we must never waste a single moment of our life but know the value of time and utilise it befittingly. He would tell us "Art is long and time is fleeting." It is only because of this great teacher that I, too, am following the same motto today, and my penctuality to time is a feather in my cap.

Lala ji's attitude towards all the students was very cordial, friendly and affectionate. He treated them as a father treats his children. I never found him using harsh words with any of them, but always speaking to these little guys of his, softly and sweetly. He was out and out an ideal teacher, but at the same time was very strict in maintaining discipline. Being himself a truthful person from top to toe he would never tolerate anyone telling lies. He very vehemently depreciated and loathed concocted lies. I fully remember how once he took to task a boy for telling a lie in the classroom. When Lala ji enquired of him why he had not brought his text-book, the boy tried to put him off with lame excuse that the book was still with the book-binder. Where upon, Lala ji was beyond himself with rage, and as a punishment kept him standing on the back bench for the whole period of 45 mts. till tears welled up in his eyes and he confessed his guilt and putting his head at Lala Ji's feet

assured him that he would never tell a lie again. I am cock-sure that this type of lesson must have left a deep imprint on his mind, and he must have imbibed it in his life.

I also remember the day when the then Director of Education, Mr. A.A. Kazmi, who has written foreward of Smt. Shanta Gupta's anthology, a collection of her poems bearing the title of her anthology "Do Bol" was interested in Urdu poetry, and when I recited my ghazal. Lala ji was thrilled & deeply impressed by a verse of it and asked me to jot it down on a piece of paper & hand it over to him. The verse is as under:-

खुद निकल जाती है काले बादलों को चीर कर,
चांद की कश्ती का कोई ना-खुदा होता नहीं।

The word "Nakhuda" means boatman or a sailor. Thus I found worshipful Lala ji also having great Zeal & Zest for poetry. His favourite poem in English was "If " by Rudyard Kipling, and he once quoted in a meeting the first two verses of it which are :

"If you can keep your head, when all about you
Are losing theirs and blaming it on you".

I also remember that the Principal of the school, Shri H.L.Gupta enhanced my pay by Rs 25/- without any hitch or hesitation when my result in Matric Final Exam. was 98.5% on Lalaji's recomendation.

I also felt many a time that the Principal of the school would consult Lala ji & seek his valuable advice in certain matters off & on.

Lalaji always kept a small knife in the pocket of his vase and in recess period or a vacant period he would peel &

esty. He was a gentleman par-excellence.The salient & chief characteristic of his life was that he was very punctual to time and he always impressed upon us for observing of punctuality and having a sense of responsibility. He would, often, dole out such a piece of advice to the students as well. He would, often, quote the Roman Ideal that we must never waste a single moment of our life but know the value of time and utilise it befittingly. He would tell us "Art is long and time is fleeting." It is only because of this great teacher that I, too, am following the same motto today, and my penctuality to time is a feather in my cap.

Lala ji's attitude towards all the students was very cordial, friendly and affectionate. He treated them as a father treats his children. I never found him using harsh words with any of them, but always speaking to these little guys of his, softly and sweetly. He was out and out an ideal teacher, but at the same time was very strict in maintaining discipline. Being himself a truthful person from top to toe he would never tolerate anyone telling lies. He very vehemently depreciated and loathed concocted lies. I fully remember how once he took to task a boy for telling a lie in the classroom. When Lala ji enquired of him why he had not brought his text-book, the boy tried to put him off with lame excuse that the book was still with the book-binder. Where upon, Lala ji was beyond himself with rage, and as a punishment kept him standing on the back bench for the whole period of 45 mts. till tears welled up in his eyes and he confessed his guilt and putting his head at Lala Ji's feet

assured him that he would never tell a lie again. I am cock-sure that this type of lesson must have left a deep imprint on his mind, and he must have imbibed it in his life.

I also remember the day when the then Director of Education, Mr. A.A. Kazmi, who has written foreward of Smt. Shanta Gupta's anthology, a collection of her poems bearing the title of her anthology "Do Bol" was interested in Urdu poetry, and when I recited my ghazal. Lala ji was thrilled & deeply impressed by a verse of it and asked me to jot it down on a piece of paper & hand it over to him. The verse is as under:-

खुद निकल जाती है काले बादलों को चीर कर,
चांद की कश्ती का कोई ना-खुदा होता नहीं।

The word "Nakhuda" means boatman or a sailor. Thus I found worshipful Lala ji also having great Zeal & Zest for poetry. His favourite poem in English was "If " by Rudyard Kipling, and he once quoted in a meeting the first two verses of it which are :

"If you can keep your head, when all about you
Are losing theirs and blaming it on you".

I also remember that the Principal of the school, Shri H.L.Gupta enhanced my pay by Rs 25/- without any hitch or hesitation when my result in Matric Final Exam. was 98.5% on Lalaji's recomendation.

I also felt many a time that the Principal of the school would consult Lala ji & seek his valuable advice in certain matters off & on.

Lalaji always kept a small knife in the pocket of his vase and in recess period or a vacant period he would peel &

cut an apple, for he seemed to he fond of fruit.

Once while the classes were off and Master Ram Lal, the science teacher, Shri Kundan lal Shastri, the Sanskrit & Hindi teacher and myself were at a loose end having a merry chit-chat in the staff room, the principal, Mr. Gupta & the head-master, Lalaji dropped in suddenly. They sat & chatted with us for sometime in a jolly mood. The principal by the way asked each one of us about our favourite dish. Lala Ram Lal said that 'Ambal' was his favourite dish, Shastri ji named Kheer (milk-rice), while I mentioned 'Dam Aaloo', and when Lalaji was asked about it, pat came the reply from him that "KHICHRI-Manmichri" was his favourite dish.

I also found him to be a chronic reader of newspapers. He would tell us that the word "news" means North, East, West & South, therefore, it was only by means of a newspaper that one could get oneself acquainted with whatever was happening all over the glove while sitting in one's room in a comfortable and cosy manner. He would also instist on his students for extra-reading and force them to borrow books from the school library every now & then. Book-reading was also, probably, his favourite pastime.

Lalaji was a Hindu to his backbone and every inch an Indian. He was proud of his being a ' Bhartiya Nagrik' as he would, often, tell us. He believed in the doctrine or idealogy of the father of the nation, Gandhiji. Thus he was a Gandhian, for he was a staunch believer of non-violence, peace, love & truthfulness. He once told me during a formal discourse with him that though his son Om ji had embraced politics, but he was little intersted in it. He had also great regard & reverence

for Jawahar Lal Nehru and often. eulogised Sardar patel. the Iron man of India.

In our vicinity, mohalla Mastgarh Lala ji was revered by all & sundry. He loved children from the core of his heart, and would often tell us in the school. reminding us of a Biblical quotation that 'Child is a little Messiha.' His old age did not come in his way at all, but he was always active & full of energy. Once when I called at his house, I found him teaching his grandson, Gautam who with his blessings is now a reputed doctor & Head of the Deptt in Medical College, Jammu. As stated above, even after his retirement when he was in the evening of his life he did not sit idle but had chosen to dedicate the remaining days of his life like Mother Teresa to the suffering humanity. Rain or Shine, he would go to 'Andh-vidyalaya'-Home for the blind and devote some time in their service.

I may be allowed to mention it here that his name was "ISHWAR DASS" and as such he was, undoubtedly, a humble servant of God, in the real sense. Lalaji was gifted with the qualities of both head & heart, and above all, was spiritually an enlightened soul. He was, in fact, a true devout of God, and knew that everything came from Him. As such his heart had no other desire than the accomplishment of His will.

Such men as Lalaji are rarely born. Though he is not in flesh & bones with us now, but the principles of his life are a becon-light for all of us. I bow my head before him whenever I visualise him with my third eye finding a towering personality with serenity and a winsome smile on his face.

(Maikash)
170 Mast Garh,

[IV]

FAREWELL ADDRESS PRESENTED TO

LALA ISHWAR DASS MENGI,

B.A., B.T,

Professor and Incharge B.T. Class,

P.W. COLLEGE, JAMMU.

On the eve of his retirement from the Government Service.

NOVEMBER 1941.

:0:

An occasion like the present is one which raises in us emotions both of joy and sorrow. When we contemplate your official life extending over a long period of 34 years as Headmaster, Inspector of Schools and finally as Professor incharge of the Training Department, years which have been spent in ceaseless toil for the good of those who had the good fortune of learning at your feet, we cannot help feeling that the rest which you are having now is so richly earned. It would be selfish to wish that you continued to be in harness, at a time of life which to a nature like yours, makes other and more worthwhile demands. It is impossible for a useful life to have a more desirable function than the knowledge that it has rendered unto Caesar which belonged to Caesar and is now turning to render to God what belongs to God.

But we would be more than human if we did not at the same time consider the prospect of separation from you in a more subjective light. We should have considered ourselves really fortunate if you had continued a little longer to guide us in our professional training till the end of our course. But we have been sufficient long associated with you as students, as teachers and latterly as teahers under training to draw unfailing inspiration from the noble example of a conscientious life dedicated to the sacred task of educational regeneration in the state.

We can assure you, Sir. that your mellow discipline and unfailing courtesy which we have learnt to appreciate has given us a truer perspective of our duties as teachers and men, than should otherwise have been possible. We would only pray that you will continue to take the same paternal interest in us and in the institution which you so successfully piloted in the early and rather difficult part of its life.

JAMMU

Nov. 20.1941

We beg to subscribe ourselves,

Sir,

Men and Women Students of B.T. Class,

P.W. College, Jammu.

[V]

इस मोनोग्राफ की पांडुलिपि त्यार हो चुकी थी कि प्रो॰ M.R.Puri (Ex-Vice Chancellor, University of JAMMU की यह प्रतिक्रिया मुझे मिली। इस लिए इसे मूल रूप में यहां परिशिष्ट में शामिल कर लिया है।

My Recollection of L. Ishwar Das Mengi

M.R. Puri

I passed my matricultion examination from S.R. High School, Parade ground, Jammu in the year 1936 at the age of 15 plus. I studied in this school for four years in classes VII through 10th. I passed first from the school and my name was recorded on the school Honours Board.

We had a very good team of devoted teachers who directed our studies at this crucial stage of education ably and competently.

L. Ishwar Dass Mengi was the Headmaster of the school. He was an epitome of simplicity and nobility. A tall, fatherly figure who stood heads and shoulders above other teachers. He was gentle and soft-spoken person, who would admonish but never rebuke. To maintain discipline in the school, he was assisted by his second master, L. K.K.Khullar who was a bulky and tough person. The two together constituted a formidable team for running the school.

After his retirement, L. Ishwar Dass Mengi continued to work for some social organisations and institutions like the Home For The Aged in Ambphalla. He was a highly respected

citizen of our town. Jammu city can boast of two personalities of school education. S. Ishwar Dass Mengi and Shri. N.D. Suri.

I have personal relations with the Mengi family and had the privilege of having many useful conversations with Lala Ji at his residence during my youth. He always showered affection on me.

L. Ishwar Dass Mengi's illustrious son, Dr. Om Prakash Mengi, has continued the family tradition of simple living and public service. The Mengi family of Mastgarh is a source of inspiration to the people of Jammu, especilly to those residing in the old city.

——————— 0 ———————

श्री ईश्वरदास मींगी द्वारा, अपनी कापियों में दर्ज किए गए कुछ सद् विचार :-

1. Golden thoughts of Emerson, an American philosopher:

i). The key to happiness is to keep your mind in tune with the Divine Mind. Find harmony through nature.

ii) Trust yourself.

iii). You are better than you think. We must recognise our own value.

iv). Thare is good in every body. Find it.

v). To trust yourself is one side of the coin. The other side

is to trust the wisdom & integrity of others.

vi). Always try your hardest.

2. जिसे आसक्ति नहीं रहती, जो मैं और मेरा नहीं कहता, सफलता या असफलता दोनों परिणामों पर जो विकार-रहित होकर धृति (धैर्य) और उत्साह के साथ कर्म करता है उसे ही **सात्त्विक कर्त्ता** कहते हैं। [श्री मद्भगवद्गीता]

3. वैर और प्रेम छुपाए नहीं छुपते। पशु और पक्षी भी शत्रु और मित्र को पहिचान लेते हैं। [रामायण]

4. God is great. He listens to the sincere prayers of his devotees.

5. मौत से कोई बच नहीं सकता, इस लिए हमेशा उसके लिए तैयार रहना चाहिए।

6. The following five should be respected and worshipped: Father, Mother, Agnihotra [अग्निहोत्र], one's soul and one's Guru.

7. These seven lead to calamity: gambling, drinking, misuse of power, jealosy, anger, selfishness & arrogance.

8. Patience is a virtue to the weak and an ornament to the strong.

9. Truth is the only ladder to heaven. [Mahabharat]

10. किफ़ायत बर्तो, सुख मिलेगा।

11. गरीबी से मजबूर आदमी पाप-कर्म भी करने पर उतारू हो जाता है।

13 धैर्य से विचार करके निष्कर्ष निकालो, जल्दबाज़ी के निष्कर्ष अकसर गल्त होते हैं।

13. बच्चे को पहले अच्छे-बुरे संस्कार अपने माता-पिता से मिलते हैं।

14. यदि एक बार यत्न करने से सफलता नहीं मिली तो निराश मत होवो। फिर यत्न करते रहो, जब तक सफलता न मिले।

15. झूठ बोलने से शायद तत्काल कुछ लाभ हो, लेकिन अन्ततः यह घाटे का सौदा है।

16. बाहिर के पट बन्द कर और भीतर के पट खोल। [कबीर]

17. सत्कर्म करो और ईश्वर पर भरोसा रखो।

18. माया-जाल बड़ा पक्का होता है। इसमें फंस कर छुटकारा, ईश्वर की दया से ही संभव है।

19. मदद उनकी करो, जिन्हें तुम्हारी मदद की ज़रूरत है।

[Reminisences of Dr. Arun Gupta reached me on 3.1.98. Hence adjusted in the end.]

Lala Jee : Some Reminisences

Shri Ishwar Dass Mengi whom all addressed as 'Lala Jee' was easily one of the most outstanding educationist the J&K has produced. He was an epitome of thevalues we all associate with great teachers who practise what they preach. Lala Jee was gifted with an imposing personality with fine chiselled features. white complexion. a commanding voice and eyes which could pierce through the heart. His turban (some times cap) and long Sherwani lent him a distinct aura of age.

My late father. Shri H.L. Gupta had the distinction of being one of his students in training college, one of his most favourite ones at that. So impressed was he with Lala Jee's great qualities of head and heart that he requested him after his retirement to become the Headmaster of "Model Academy" School. Lala Jee gracefully accepted his offer since he was truly dedicated to education.

Lala Jee was a strict disciplinerian and extremely punctual and regular. I remember that he seldom took leave and was never found late on duty. He would also utilise

every minute in the class in meanigful educational activities. He always carried a small stick with him and would use it sometimes to warn erring students. He seldom used stick however.

Lala Jee was a teacher trainer 'Par excellence' and I would often find him giving useful hints and advice to new and young teachers. Through persistent efforts, he was able to create a group of local teachers who were able to teach in English medium, ensuring at the same time brilliant School results.

Lala Iswar Dass Mengi was scruplously honest. He was a real humanist with a soft heart. Once, as a student of 5th and 6th class my note-book was found to be dirty for which I was severely punished by my father sh. H.L.Gupta. After the incident, Lala Jee ordered a glass of water and consoled me affectionately. He even called for my father and rebuked him for the harsh treatment that I had received at his hands. My father had almost to seek apology from him.

Lala Jee continued to play the role of our family Advisor and friend till his last days. Even in his twilight days, his towering personality, alert mind and the heart of an educator did not fail to impress me and other onlookers. He was an avid reader till his very last, keeping

the lamp of learning burning. Another trait of a real educator.

As an ideal teacher Lala Jee was a perfect companion and an ideal foil for a strict and authoriterian Principal which Shri H.L. Gupta was. He was often called upon to restore peace and harmony wherever situations warranted his intervention, and he did the job remarkably well due to his peace-loving and broadminded temperament.

The history of educational development in J&K will remain incomplete without recording the contributions of the highest order made by Lala Ishwar Dass Mengi. In addition to what all he did he was instrumental in producing dedicated and great teachers and educationsts who later contributed to the development of education in the region and the State after him, thereby offering their "Gurudakshna" for their mentor, the great educator - Lala Iswar Dass Mengi Jee.

Dr. Arun K. Gupta
Model Institute of Education and
Research Director.

अध्याय - नं. 9

मेरी ओर से

(डॉ. ओम प्रकाश मींगी)

(दन्त चिकित्सक)

कुछ वर्ष हुए सन् 1960 ई० में, जब मेरे पूज्य पिता, श्री ईश्वरदास मींगी जी की आयु 73-74 वर्ष थी, और मेरी आयु - वर्ष की हो गई थी, मैंने एक दिन उनसे प्रार्थना की कि - "आपने जीवन में सच्चाई, सादगी, देश-प्रेम और समाज-सेवा के व्रत को दृढ़ता से निभाया है। मुझे भी इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। मैंने, देश-कार्य को प्राथमिकता देने के कारण, अपने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा की तो आपने, मेरी इस कमी को भी पूरा करने के लिए असीम परिश्रम करके मेरी सन्तान की भी पूरी देख-भाल की, उनके भारतीय संस्कृति के अनुरूप संस्कार दिए और आगामी जीवन यापन के लिए योग्य शिक्षा प्राप्त कराई।''

"अब मेरी इच्छा है कि आप अपने जीवन के अनुभवों तथा आदर्शों को लिपि-बद्ध कर दें ताकि हमारी आगामी पीढ़ियां उनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकें।" उन्होंने मेरा यह निवेदन मान लिया और जहां तक उन्हें स्मरण था उन्होंने अपने जीवन की कुछ घटनाओं तथा अनुभवों को, कापियों पर, लिख देने का प्रयत्न किया। उनकी वे 'डायरियां' हमारे पास सुरक्षित हैं।

उनका जीवन सनातन हिन्दू संस्कृति के ऊंचे मानवीय आदर्शों का प्रतीक था तथा अपने शिक्षक-जीवन में भी वे, प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा का सफल आदर्श माने जाते थे। उनके जीवन के अनुभवों तथा आदर्शों को आने

वाली पीढ़ियां भी अपना सकें, तथा इस उद्देश्य से मैंने रियास्त के प्रसिद्ध साहित्यकार, पद्म-श्री की उपाधि से सम्मानित प्रो० रामनाथ शास्त्री जी से, मेरे पूज्य पिता ला० ईश्वरदास जी का जीवन-सम्बन्धी एक "मोनोग्रॉफ" (Monograph) लिखने की प्रार्थना की। उन्होंने यह दायित्व सहर्ष स्वीकार किया और कुछ महीने अनवरत परिश्रम करके यह 'मोनोग्रॉफ' तैयार किया है। मैं शब्दों में उनका धन्यवाद करने में असमर्थ हूं। इस कार्य के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

अब कुछ अपने बारे में : -

मैं सन् 1937 से सन् 1941 तक मैंडीकल स्कूल, अमृतसर में पढ़ा। अन्तिम वर्ष में, परीक्षा में बैठने से पहले ही पिता जी का आदेश मान कर मैंने अपनी शादी के लिए हां कर दी।

अमृतसर में मैं होस्टल में रहता था। मैं वहां प्रायः सुनता था कि हिन्दुओं से, दूसरे अहिन्दू वर्ग के उग्र-पंथी प्रायः उग्रता का व्यवहार करते थे और हिन्दू, बहुसंख्यक होते हुए भी, असहाय बन कर ये उग्र-व्यवहार तथा अपमान सहते रहते हैं। मेरी समझ के मुताबिक इसका कारण यह था कि हिन्दू-समाज असंगठित था। मेरे साथियों से मुझे ज्ञात हुआ कि पंजाब में जिन-जिन नगरों-कसबों में राष्ट्रीय स्वयं सेवक नाम की संस्था की 'शाखाएं' लगती हैं वहां-वहां उन उग्रवादी लोगों के आघातों पर रोक लगती जा रही है।

मैं 1941 ई० में अपनी पढ़ाई पूरी कर जब जम्मू में लौटा तो मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई कि यहां भी 'संघ' की शाखाएं लगती हैं । मैंने भी इनमें से एक शाखा में नियमित रूप से जाना शुरू कर दिया।

इस संगठन में अधिक रुचि लेने के कारण मुझे वहां अधिक समय देना पड़ता था, जिसका प्रभाव मेरे निजी व्यवसाय पर तथा अपने परिवार के प्रति

मेरी जिम्मेवारियों पर पड़ना स्वाभाविक था। जिस वर्ष मैं अमृतसर से जम्मू में आया, उसी वर्ष अर्थात् 1941 ई॰ में मेरे पिता जी शिक्षा-विभाग की नौकरी में प्रोफेसर के पद पर से रिटायर हुए। उन्हें उस समय कुल 148/रु॰ पैन्शन मिलती थी। इस पैन्शन से परिवार की सुचारू रूप से व्यवस्था चलाना कठिन काम था। इसलिए उन्होंने जम्मू शहर की एक निजी शिक्षा-संस्था, मॉडल अकैडमी में हैडमास्टर के रूप में काम करना स्वीकार कर लिया।

पूज्य पिता जी एक आदर्श कर्म-योगी पुरुष थे। वे रिटायर होकर भी पारिवारिक जिम्मेवारियों के कारण कार्य-रत रहे। अपने जीवन के संस्कारों के कारण, 'लोक-सेवा' का व्रत निभाने के लिए वे वेद मन्दिर, जम्मू की प्रबन्ध-समिति के मन्त्री बन कर वहां लोक-सेवा का काम करने लगे। यहां उन्होंने लोक-कल्याण की भावना से कई संस्थाओं को चालू किया। जैसे **गऊशाला, अन्ध-विद्यालय, वृद्धाश्रम** और **प्राकृतिक चिकित्सा-केन्द्र**। इसके अतिरिक्त वहां बे-सहारा अनाथ बच्चों के लिए एक **बाल-निकेतन** की भी स्थापना की।

उन्होंने एक **स्त्री उद्योग संस्था** की भी स्थापना की जहां विधवा स्त्रियों को कढ़ाई, सिलाई तथा बुनाई इत्यादि कार्यों की सिखलायी दिये जाने का प्रबन्ध था। उनका मत था की हर गृहस्थी पुरुष को प्राचीन आश्रम-व्यवस्था के अनुसार, वानप्रस्थ आश्रम में आकर निःस्वार्थ लोक-सेवा करनी चाहिए। मेरे पिता जी 87 वर्ष की आयु तक इस आश्रम-व्यवस्था का पूरी तन्मयता से पालन करते रहे।

विदेशी साम्राज्य की गुलामी से देश के मुक्ति-संग्राम में उनकी खासी रुचि थी। **महात्मा गांधी की आत्मकथा** और दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह जैसी पुस्तकें पढ़ने में उन्हें गहरी दिलचस्पी थी। धार्मिक ग्रन्थों में वे **उपनिषदों**

के जीवन-दर्शन से नितान्त प्रभावित थे। लोकमान्य जी का **गीता-रहस्य** उनके पठनीय ग्रन्थों में हमेशा बना रहा। **ईशावास्य उपनिषद्** का पद्यानुवाद वे नित्य अपनी प्रार्थना में सस्वर पढ़ते थे।

इस सारे स्वाध्याय का प्रभाव उनके जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देता था। अपने व्यवहार में वे श्रद्धा-पूर्वक इन बातों का पालन करते थे तथा अपने परिवार-जनों को तथा अपने संपर्क में आने वाले दूसरे लोगों को भी इन बातों का अनुपालन करने के लिए हमेशा प्रेरित करते थे।

उनके आदर्श जीवन की कुछ छोटी लेकिन महत्वपूर्ण बातें मुझे आज तक याद हैं। जैसे-

(i) जब वे स्कूल के हैडमास्टर थे, तब उनकी सरकारी सन्दूकची में होल्डर, पिंसल, रबड़, कोरे कागज़ आदि चीजें देखकर मेरा मन उन्हें लेना चाहता था, लेकिन उन्होंने डांट कर मुझे समझाया कि इस तरह सरकारी चीजें लेना और उनको प्रयोग में लाना चोरी और बेइमानी का काम होता है।

(ii) मेरा बड़ा लड़का गौतम कुमार बम्बई में दन्त-चिकित्सा की पढ़ाई करने गया तो सरकारी राशन-कार्ड में से पिताजी ने उसका नाम उसी समय कटवा दिया। ऐसा ही उन्होंने मेरे छोटे बेटे विक्रम के अलीगढ़ में पढ़ने के लिए जाने पर भी किया था।

(iii) सन् 1947 में देश के विभाजन के पश्चात् नवम्बर महीने की यह घटना है। उन दिनों रसोई में खाना चूल्हे में लकड़ियां जला कर पकाया जाता था।

एक दिन हमारे पड़ोस की एक महिला देवदार की कुछ लकड़ियां, यह कह कर हमारे घर में दे गई कि गीली लकड़ियां

आसानी से नहीं जलतीं, आप इन लकड़ियों को जला कर काम चलाएं। पिता जी को पता चला कि ये देवदार की लकड़ियां, उनकी पड़ोसन मुहल्ले के किसी सूने पड़े मुसलमान के घर से लाई है तो उन्होंने उन्हें जलाकर पकाई हुई सब्ज़ी फिंकवा दी और आदेश दिया कि ऐसी लकड़ी हमारे घर में दुबारा नहीं लाई जाए।

(iv) मैं दन्त-चिकित्सक की शिक्षा के लिए पहले लाहौर के एक कालेज में दाखिला लेने के लिए गया। वहां अंग्रेज़ सरकार, रियासतों से आने वाले विद्यार्थियों से 'कैपीटेशन' (Capitation) फीस लेकर उन्हें कालेज में दाखिल करती थी। मैंने इस बात से बचने के लिए अपना पता लाहौर का दिया। लाहौर में मेरे एक मामू रहते थे। मैंने जम्मू आकर पिताजी को यह बात बतलाई तो उन्होंने इस तरह तथ्य छिपाकर प्रवेश पाने और पढ़ाई करने को झूठ और मक्कारी कह कर, मुझे वहां पढ़ने से रोक दिया। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि अपना सही पता लिखो, और उस पर यदि 'कैपीटेशन' फ़ीस देना पड़े तो दो।

मेरी इस ग़ल्ती के कारण मैं उस साल दाखिला नहीं ले सका। मुझे अपनी ग़ल्ती की सज़ा मिली।

(v) सन् 1953 ई० में प्रजा-परिषद की 'ऐजीटेशन' के दौरान मैं पोलीस से छुपता फिरता था। पिता जी को इसका पता चला, क्योंकि मैं रात के समय कभी-कभी घर आ जाया करता था। उन्होंने मुझे साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम्हारे यहां रहते यदि पोलीस तुम्हें ढूंढने आ गई तो मैं तुम्हारी ख़ातिर झूठ नहीं बोलूंगा।

हमारे परिवार के परम पूजनीय सदगुरू श्री चन्द्र स्वामी जी. जो आजकल

देहरादून ग्राम डोमेट में साधना केन्द्र आश्रम में निवास रखते हैं, जब अक्तूबर 1953 श्रीनगर से जम्मू पधारे तो साधना के लिए किसी उचित स्थान की खोज के सम्बन्ध में स्वर्गीय पं. प्रेम नाथ जी डोगरा से मिले। स्वामी जी कहते थे– "I have heard the call of God. It is irresistible. I cannot ignore it. I must see Him. I have resolved to realise Him first hand. I am seized with the aspiration to discover Him." इसी हेतु उचित अनुकूल स्थान चाहते थे। पंडित जी जो श्री वेद मन्दिर के प्रधान थे उन्हें वेद मन्दिर ले गये वहां एक छोटा सा मन्दिर था जिसमें मूर्ति अभी नहीं थी। वह स्थान पूज्य गुरुदेव ने पसन्द किया। सौभाग्यवश मेरे पिता लाला ईश्वर दास जी वेद मन्दिर के मन्त्री थे। यह था हमारे सौभाग्य का दिन पिता जी ने उनके भोजन निवास का प्रबन्ध तो करा ही दिया साथ ही उन के साथ सत्संग भी करते थे। मुझे ज्ञात है पिता जी उनसे श्री गीता जी पढ़ते और अर्थ एवं रहस्य पर चर्चा भी करते थे। इस पुस्तक के लिए मैंने पूज्य गुरू देव जी से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु उनसे प्रार्थना की। उन्होंने कृपा कर मुझे एक पत्र भेजा जो पुस्तक के प्रारम्भ में प्रकाशित है।

इस सभी बातों के लिए मैं अपने पूज्य पिता, स्व० ईश्वरदास मींगी जी का अत्यन्त ऋणी हूं। मैं कई जन्म लेकर भी उनकी शिक्षाओं का ऋण नहीं चुका सकूंगा। मैं परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे महानुभाव, जिनके हाथों में **लाला जी की यह जीवनी** आए वे सभी जीवन के इन मूल्यों को गम्भीरता से आत्मसात करने का यत्न करें।

मैं इस पुस्तक का यह उपहार अपने स्वर्गीय माता-पिता के चरणों में समर्पित करता हूं।

❑❑❑